अलंकार सम्प्रदाय

विभिन्न आचार्यों द्वारा अलंकार–निरूपण–

- अलंकृत करने वाले साधन से ही अलंकार का सामान्य अर्थ लिया जाता है।
- आचार्य भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में चार अलंकारों का उल्लेख किया है– उपमा, रूपक, दीपक और यमक।

आचार्य भामह

- 'अलंकार सम्प्रदाय' के प्रवर्तक आचार्य भामह माने जाते है।
- इन्होंने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना था–

''न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनितामुखम्''

''विभाति नारीव विदग्धमण्डना''

भावार्थ है कि सुंदर नारी का मुख भी आभूषणों के बिना शोभा नहीं देता, वैसी ही कविता अलंकारों के अभाव में सुशोभित नहीं होती।

- इन्होंने सभी अलंकारों के मूल में वक्रोक्ति को माना। लोक की सामान्य सीमा का अतिक्रमण करने वाली चमत्कारपूर्ण वाणी को अतिशयोक्ति कहा और इसी अतिशयोक्ति को वक्रोक्ति माना। इनके अनुसार, यह वक्रोक्ति अर्थ को विभा (आभा) से युक्त करती है–

''सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनायाऽर्थौ विभाव्यते।

यत्नोऽस्यां कविता कार्यः कोऽलंकारोऽनया बिना।।''

आचार्य दण्डी

- अलंकार को परिभाषित करने का प्रथम प्रयास आचार्य दण्डी ने किया। इन्होंने काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले सभी धर्मों को अलंकार माना–

''काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारन् प्रचक्षते।''

इस परिभाषा के अनुसार रूपक, उपमा आदि अलंकारों के साथ–साथ रस, गुण, ध्वनि, प्रबंधकाव्य, नाट्यसंधि आदि काव्यशास्त्रीय तत्त्व भी अलंकार की परिधि में आ जाते हैं।

- अलंकारवादी आचार्यों ने काव्य के अन्य तत्त्वों को अलंकार में समाहित करते हुए निम्नलिखित नाम प्रदान किये–

काव्य–तत्त्व	**प्रदत्त विशेषण**
रस	रसवद् अलंकार
भाव	प्रेयस्वद् अलंकार
रसाभास, भावाभास	ऊर्जस्वि अलंकार
भावशांति	समाहित अलंकार

उद्भट ने ऊर्जस्वि अलंकार को स्पष्ट करते हुए कहा कि क्रोध आदि के अनुचित प्रयोग से काव्य पर नकारात्मक प्रभाव पडता है और रसों एवं भावों को भी औचित्यपूर्ण रचना नहीं हो पाती, ऐसे स्थान पर ही यह अलंकार पाया जाता है।

आचार्य वामन

➢ **रीतिवादी आचार्य वामन ने इसे परिभाषा को अस्वीकार करते हुए इसे 'गुण' के संदर्भ में प्रयुक्त किया–**

''काव्य शोभाशः कर्तारौ धर्मः गुणा

तदपिशयहेतवस्तलंकाराः।।''

(अर्थात् गुण काव्य के शोभाकारक धर्म है और अलंकार उसके वर्धक हैं।)

➢ इन्होंने यह कहकर अलंकार का महत्त्व और कम किया कि काव्य में नित्य स्थान गुण का है और अलंकार का अनित्य स्थान है– 'पूर्वे नित्याः'।

➢ **वामन ने अलंकार के दो लक्षण दिये हैं–**

'अलंकृतिः अलंकारः।'

(जो अलंकार करे, वह अलंकार है।)

'सौंदर्यमलंकारः'

(सौंदर्य ही अलंकार है।)

आचार्य आनंदवर्धन

➢ **ध्वनिवादी आचार्य आनंदवर्धन ने लिखा–**

''अंगाश्रितास्त्वंलकाराः मन्तव्याः कटकादिवत्।''

भावार्थ यह है कि जिस प्रकार कटक–कुंडल आदि आभूषण अमूमन शरीर की सुंदरता में वृद्धि करते हैं वैसे ही अलंकार भी काव्य के शब्दार्थ रूपी शरीर की सुंदरता को बढ़ाते हैं किन्तु कभी–कभी ये दोनों ही इनकी शोभा में वृद्धि नहीं भी करते। इस प्रकार इन्होंने अलंकार को 'काव्य का बाह्य शोभाकारक तत्त्व' तक सीमित कर दिया।

अन्य आचार्य

➢ आचार्य राजशेखर ने अलंकार को वेद का सातवाँ भाग माना और अलंकार को वेदार्थ का उपकारक घोषित किया।

➢ आचार्य जयदेव अलंकार के महत्त्व पर बल देते हैं–
'असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृनी'
(उष्णतारहित अग्नि के समान अलंकारविहीन काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती।)

➢ अग्निपुराणकार वेदव्यास के अनुसार, अर्थालंकार के अभाव में सरस्वती विधवा स्त्री के समान है–
'अर्थालंकाररहित विधवेव सरस्वती'

➢ **ध्वनि समर्थक आचार्य जगन्नाथ के अनुसार –**
''काव्यात्मनो व्यंग्यस्य रमणीयताप्रयोजका अलंकारः।''
(काव्यात्मा व्यंग्य की रमणीयता के प्रयोजक ही अलंकार कहलाते हैं।)

➢ भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट, भोज, जयदेव, अप्पयदीक्षित आदि अलंकारवादी आचार्य तथा आनंदवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि अलंकार–विरोधी आचार्य माने गए हैं।

➢ रीतिकाल में अलंकार को बहुत महत्त्व दिया गया।

➢ आचार्य भामह का अनुकरण करते हुए केशवदास ने 'कविप्रिया' में लिखा–
''जदपि सुजाति सुलक्षनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजहीं कविता वनिता मित्त।।''

हिंदी के विद्वानों के मत

- 'अलंकारों का प्रयोग नवयुग की चेतना के अनुरूप बलात् नहीं करना चाहिये।'' –महावीरप्रसाद द्विवेदी ('रसज्ञ रंजन')
- **आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अलंकार संबंधी उल्लेख्य कथन इस प्रकार हैं–**
  - ''मैं अलंकार को केवल वर्णन–प्रणाली मानता हूँ।''
  - ''ये साधन हैं, साध्य नहीं। साध्य को भुलाकर इन्हीं को साध्य मान लेने से कविता का रूप कभी–कभी इतना विकृत हो जाता है कि वह कविता कविता ही नहीं रह जाती।''
  - ''अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत के अनुरूप होनी चाहिये और उसमें वस्तु–गुण और क्रिया अथवा व्यापार–समष्टि का भाव जगाने की वैसी क्षमता होनी चाहिये जैसी प्रस्तुत में है।''
  - ''भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी–कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।''
- ''जब तक अलंकार भीतरी उत्साह के द्योतक होते हैं तब तक वे शोभा को उत्पन्न करने वाले कहे जा सकते हैं, किंतु जब वे रूढ़ि या परंपरा मात्र रह जाते हैं तब वे भार–रूप में दिखाई देने लगते हैं।''
- ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिये नहीं, वे काव्य की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।'' – सुमित्रानंदन पंत
- ''मन के उच्छ्वास के साथ वाणी अनिवार्यतः उच्छ्वसित हो जाती है। वाणी का यही उच्छ्वास उक्ति वैचित्र्य है।'' – डॉ. नगेन्द्र ('रीतिकाव्य की भूमिका')

अलंकार्य

- अलंकार्य से तात्पर्य है – अलंकार से अलंकृत होने वाला।
- आनंदवर्धन के अनुसार, शृंगार आदि 'रस' अलंकार्य होते हैं क्योंकि अनुप्रास आदि अलंकार रस को ही तो अलंकृत करते हैं।
- कुंतक आनंदवर्धन से असहमति प्रकट करते हुए लिखते हैं कि 'शब्दार्थ' अलंकार्य है क्योंकि अलंकार मूलतः काव्य के शब्दार्थ रूपी शरीर को ही सुशोभित करते हैं। उन्हें शब्दार्थ से आभूषणों की तरह अलग नहीं किया जा सकता।
- परवर्ती काव्यशास्त्र में कुंतक का मत अधिक स्वीकृत हुआ।
- निष्कर्षतः
  आनंदवर्धन – 'रस' अलंकार्य है,
  कुंतक – 'शब्दार्थ' अलंकार्य है।

अलंकार–संख्या

आचार्य	ग्रंथ	संख्या
भरतमुनि	'नाट्यशास्त्र'	04
वेदव्यास	'अग्निपुराण'	16
भामह	'काव्यादर्श'	39
दण्डी	'काव्यादर्श'	35
उद्भट	'काव्यालंकार सार–संग्रह'	40
वामन	'काव्यालंकार सूत्र'	33
रुद्रट	'काव्यालंकार'	52
कुंतक	'वक्रोक्तिजीवित'	13
भोजराज	'सरस्वती कंठाभरण'	72

मम्मट	'काव्यप्रकाश'	67
जयदेव	'चंद्रालोक'	100
विश्वनाथ	'साहित्दर्पण'	88
अप्पयदीक्षित	'कुवलयानंद'	124
जगन्नाथ	'रस गंगाधर'	161

- उद्भट ने 'गुण' और 'अलंकार' में अंतर न करते हुए 'उपनागरिका', 'परुषा' और 'कोमला' वृत्ति का विवेचन अनुप्रास के अंतर्गत किया।
- कुंतक ने निरूपण तो 20 अलंकारों का किया है किंतु प्रतिवस्तुपमा, उपमेयोपमा, तुल्ययोगिता अनन्वय, निदर्शना, परिवृत्ति और सहोक्ति का उपमा में तथा समासोक्ति को श्लेष में शामिल कर अलंकारों की संख्या 13 मानी है।
- भोज ने द्विरुक्ति अनुप्रास के उपभेद के रूप में जिस 'वीप्सा' का उल्लेख किया, उसका सर्वप्रथम विवेचन रीतिकाल में आकर भिखारीदास ने किया।

अलंकारों के प्रकार

- अलंकारों के वर्गीकरण का सर्वप्रथम प्रयास करते हुए आचार्य वामन ने दो भेद किये – 'शब्दालंकार' और 'अर्थालंकार'।
    - शब्दालंकार – वाचक द्वारा
    - अर्थालंकार – वाच्य द्वारा
    - वेदव्यास और आचार्य भोज ने इसमें तीसरा भेद जोड़ दिया – 'उभयालंकार'।
- इस प्रकार अलंकार के तीन भेद नियत हुए–
    - शब्दालंकार (शब्दगत अलंकार)
    - अर्थालंकार (अर्थगत अलंकार)
    - उभयालंकार (शब्दार्थगत अलंकार)
- आचार्य मम्मट ने 'अन्वय–व्यतिरेक–संबंध' को इस वर्गीकरण का आधार माना।
    - अन्वय – अन्वय का अर्थ है 'परस्पर तालमेल'। जहाँ शब्द (पद) और चमत्कार में परस्पर तालमेल हो वहाँ 'अन्वय' होता है। काव्य में जिस पद से चमत्कार उत्पन्न हो यदि उसके स्थान पर उसके पर्यायवाची के प्रयोग से वह चमत्कार नष्ट हो जाए तो वह 'शब्दालंकार' माना जाएगा।
    - व्यतिरेक – व्यतिरेक का अर्थ है 'अंतर'। जहाँ पद और चमत्कार में परस्पर तालमेल के बजाय अंतर हो, वहाँ 'व्यतिरेक' होता है। जहाँ चमत्कार पैदा करने वाले पद के स्थान पर उसके पर्यायवाची के प्रयोग से चमत्कार नष्ट नहीं होता वहाँ 'अर्थालंकार' माना जाएगा।
    - जहाँ उक्त दोनों स्थितियाँ बनी रहती है वहाँ 'उभयालंकार' माना जाएगा।
- शब्दालंकार – अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि।
- अर्थालंकार – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि।
- उभयालंकार – डॉ. रामचंद्र तिवारी ने 'पुनरुक्तवदाभास' को माना।
- 'उपमा' को राजशेखर ने संपूर्ण अलंकारों की जननी तथा अप्पयदीक्षित ने अलंकारों का शिरोरत्न कहा।

श्लेष अलंकार

- **श्लेष अलंकार –** जब किसी पद में प्रयुक्त एक ही शब्द के अलग–अलग सन्दर्भ के अनुसार अलग–अलग अर्थ प्रयुक्त हो जाते हैं तो वहाँ श्लेष अलंकार माना जाता है।
- श्लेष शब्द 'शिलष्+अण् (अ)' के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है– 'चिपकना' अर्थात् जहाँ एक ही शब्द से प्रसंगानुसार अनेक अर्थ प्रकट होते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है;
- **उदाहरण –**
- **1. "रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।**
- **पानी गये न ऊबरे, मोती, मानस, चून।।"**
- यहाँ द्वितीय दल में प्रयुक्त 'पानी' शब्द में श्लेष अलंकार है। मोती के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'चमक', मानस (मनुष्य) के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'इज्जत' एवं चून (चूना पत्थर या आटा) के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'जल', ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार एक ही शब्द प्रसंगानुसार अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण यहाँ श्लेष अलंकार है।
- **2. "चरण धरत चिन्ता करत भावत नींद न सोर।**
- **सुबरण को ढूँढ़त फिरै, कवि कामी अरु चोर।।"**
- यहाँ द्वितीय दल में प्रयुक्त 'सुबरण' एवं 'चरण' शब्दों में श्लेष अलंकार है। कवि के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'सुन्दर अक्षर', कामी पुरुष के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'सुन्दर रंग वाली स्त्री' तथा चोर के सन्दर्भ में इसका अर्थ 'स्वर्ण' ग्रहण किया जाता है, अतएव यहाँ श्लेष अलंकार है।
- 'चरण' शब्द के दो का अर्थ हैं – 1. कविता की पंक्ति या पाद 2. पैर (पद)।
- **3. "रहिमन जे गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।**
- यहाँ श्लिष्ट शब्द – 'बारै' व 'बढ़ै' है। दीपक के संदर्भ में इसका अर्थ – जलना, बुझना। कपूत के संदर्भ में इसका अर्थ – जन्म लेना, बडा होना।
- **श्लेष अलंकार के भेद :–** श्लेष अलंकार के प्रमुखतः दो भेद माने जाते है :–
- (अ) अभंग श्लेष (ब) सभंग श्लेष
- **(अ) अभंग श्लेष :–** जब किसी पद में प्रयुक्त श्लिष्ट शब्द के टुकड़े किये बिना ही शब्दकोश या लोक–प्रसिद्धि अर्थ के अनुसार अलग–अलग अर्थ प्रयुक्त हो जाते हैं तो वहाँ अभंग श्लेष अलंकार माना जाता है।
- **उदाहरण –**
- **1. "नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोय।**
- **जेतो नीचो ह्वै चले, तेतो ऊँचो होय।।"**
- मनुष्य की व नल के पानी की गति एक समान होती है, क्योंकि जैसे नल जितना जमीन में गहरा दबा होगा, उसका पानी उतना ही ऊपर उठेगा वैसे ही मनुष्य भी जितना नीचा (विनम्र) होकर चलेगा, वह उतना ही अधिक ऊँचा (उन्नत या बडा) होता चला जायेगा।
- यहाँ 'नीचो' (गहरा, विनम्र) तथा ऊँचो (ऊपर उठा हुआ, उन्नत या बडा) शब्दों के दो–दो अर्थ बिना टुकडे किये ही प्रकट हो रहे हैं, अतएव यहाँ अभंग श्लेष अलंकार है।
- **2. "मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।**
- **जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होय।।"**
- झाँई – 1. परछाई 2. झलक 3. ध्यान
- स्यामु – 1. श्याम (कृष्ण) 2. श्याम (साँवला रंग) 3. पाप या कल्मष
- हरित दुति – 1. हरे भरे (प्रसन्न) 2. हरा रंग 3. कांतिहीन या क्षीण
- प्रस्तुत पद के निम्न तीन भावार्थ ग्रहण किये जाते हैं–
- 1. जिसके तन की परछाई पडने से श्याम (कृष्ण) हरे भरे (प्रसन्न) हो जाते हैं, वही राधा नागरी मेरी भव–बाधाओं को दूर करे।

- 2. जिसके तन की झलक मात्र पड़ने से श्याम वर्ण वाले कृष्ण हरे रंग की द्युति (चमक) वाले हो जाते हैं, वही राधा नागरी मेरी भव–बाधाओं को दूर करे।
- 3. जिसके तन (रूप) का ध्यान पड़ने से (भक्त के हृदय में आने से) काले रंग वाला पदार्थ (कल्मष, पाप आदि) हृतद्युति (कल्मषता से रहित) हो जाता है अर्थात् दुःखद प्रभाव छोड़ देता है, वही राधा नागरी मेरी भव–बाधाओं को दूर करे।
- **3. इन्द्रनील मणि महा चषक था, सोम रहित उलटा लटका।**
- सोम – चन्द्रमा व सोमरस।
- **4. "बलिहारी नृप कूप की गुण बिन बूँद न देइ।"**
- श्लिष्ट शब्द – गुण
- नृप पक्ष में – विशेषता (बुद्धि)
- कूप पक्ष में – रस्सी
- अर्थात् राजा उसी को धन देता है जो गुणवान होता है तथा कुआँ उसी को पानी देता है जो उसमें रस्सी डालता है।
- **5. "मधुवन की छाती को देखो, सूखी कितनी इसकी कलियाँ।"**
- मधुवन – उद्यान/यौवन
- कलियाँ – पुष्पकलियाँ/उमंगें या आशाएँ
- **6. "जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं, यह जानत सब कोय।**
- **मद्येतर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय।।"**
- गाँठ – ईख (गन्ने) की पोर तथा विवाह में वर–वधू के गठबंधन की गाँठ
- **7. कुजन पाल गुनबर्जित अकुल अनाथ।**
- **कहौं कृपानिधि राउर कस गुननाथ।।**
- कुजनपाल – पृथ्वी का पालन करने वाला/दुष्टों का पालन करने वाला।
- गुनबर्जित – गुणहीन/गुणों से परे
- अकुल – कुलहीन/कुल की सीमा से परे
- अनाथ – जिसका कोई धनीधोरी न हो। जिसका कोई स्वामी न हो अर्थात् जो सबका स्वामी हो।
- **8. "नवजीवन दो घनश्याम हमें।"**
- नवजीवन – जीवन/पानी, घनश्याम – कृष्ण/बादल
- **9. मंगत को देखि पट देत बार–बार है।**
- पट – वस्त्र, कपाट।
- **10. "लाग्यो सुमनु ह्वै है सफलु, आतप रोसु निवारि।**
- **बारी बारी आपनी सींचि सुहृदता वारि।।"**
- सुमनु – सो मन/पुष्प, सफलु– प्राप्त कामना/फलयुक्त, आतप रोसु – दुःखी क्रोध/गर्मी की प्रचण्डता, बारी– भोली बालिका/माली, बारी– पारी/वाटिका, सुहृदता वारि – मित्रता के वचन/सानुकूल जल
- **11. यह विनसत नग राखि कैं क्यों न सुजस जग लेहु।**
- **जरी विषम जुर ज्याइए आय सुदरसन देहु।।**
- **(ब) सभंग श्लेष :–**
- जब किसी पद में किसी श्लिष्ट शब्द के टुकड़े करने पर ही एक से अधिक अर्थ प्रकट होते हैं तो वहाँ सभंग श्लेष अलंकार माना जाता है।
- **उदाहरण –**
- **1. "अजरामरता अयोध्या नगरी किसे प्रिय नहीं लगती।"**
- यहाँ 'अजरामरता' शब्द के टुकड़े करने पर निम्नानुसार दो अर्थ प्रकट होते हैं–
- (अ) 'अज' एवं 'राम' जैसे राजाओं में रत (से युक्त) अयोध्या नगरी किसे प्रिय नहीं लगती है।

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

- (ब) 'अजर (ता)' एवं 'अमरता' प्रदान करने वाली अयोध्या नगरी किसे प्रिय नहीं लगती है।
- **2. "संतत सुरानीक हित जेही। बहुरि सक्र सम बिनवहु तेही।"**
- यहाँ 'सुरानीक' शब्द के टुकडे करने पर निम्नानुसार दो अर्थ प्रकट होते हैं–
- (अ) 'सुर + अनीक' अर्थात् सुरों (देवताओं) की अनीक (सेना)
- (ब) 'सुरा + नीक' अर्थात् अच्छी (नीक) शराब (सुरा)
- **3. "चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर।**
- **को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर।।"**
- वृषभानुजा (सभंग श्लिष्ट पद) = वृषभानु + जा = वृषभानु की पुत्री राधा
- –वृष + भानु + जा = वृष राशि के सूर्य की पुत्री
- वृषभ + अनुजा = गाय
- हलधर (अभंग श्लिष्ट पद)
- –बलराम का भाई कृष्ण –शेषनाग के अवतार का भाई –बैल
- **4. "अजौं तर्यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग।**
- **नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन के संग।।"**
- सभंग श्लिष्ट पद – तर्यौना = कान का आभूषण (कर्णफूल)
- तर्यौ + ना = जो तरा नहीं/भवसागर पार नहीं कर सका
- अभंग श्लिष्ट पद–श्रुति = वेद शास्त्र तथा कान
- नाकबास = स्वर्ग का पद तथा नाक (नासिका) का स्थान
- बेसरि = खच्चरी (नीच प्राणी) तथा नाक का आभूषण
- मुकुतन = श्रेष्ठ (सज्जन) पुरुष तथा मोती

यमक अलंकार

यमक अलंकार – यमक का अर्थ है – युग्म या जोड़ा। जहाँ शब्दों की आवृत्ति अर्थात् एक शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हो और उसका अर्थ अलग–अलग हो, वहाँ यमक अलंकार होता है।

अर्थात् काव्य में जहाँ एक ही शब्द दो या अधिक बार आए और प्रत्येक बार उसका अर्थ भिन्न हो, वहाँ 'यमक अलंकार' होता है।

उदाहरण –

1. कनक–कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।

वा खाये बौराय जग, वा पाये बौराय।।"

उपर्युक्त दोहे में 'कनक' शब्द की आवृत्ति हुई है, यहाँ पहले कनक का अर्थ– 'स्वर्ण' तथा दूसरे 'कनक' का अर्थ धतूरा है, अतः यहाँ 'यमक' अलंकार है।

2. "सारंग ले सारंग उड्यो, सारंग पुग्यो आय।

जे सारंग सारंग कहे, मुख को सारंग जाय।।"

यमक अलंकार के भेद – यमक अलंकार के मुख्यतः निम्न दो भेद माने जाते है –

(i) अभंग यमक (ii) सभंग यमक

(अ) अभंग यमक – जब किसी पद में शब्द के टुकड़े किये बिना ही उसकी आवृत्ति दिखलायी पड़ जाती है तो वहाँ अभंग यमक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1. "भजन कह्यो तातै भज्यौ, भज्यौ न एको बार।

दूर भजन जातै कह्यो, सो तू भज्यौ गवार।।"

प्रस्तुत पद में एक गुरु अपने शिष्य/अनुयायी को धिक्कारता हुआ कहता है "तुझे जिसकी भक्ति करने के लिए कहा गया था, उस ईश्वर भक्ति से दूर भाग गया तथा जिस सांसारिक मोह माया से तुझे दूर भागने के लिए कहा गया था, उसी को तुमने अपना लिया।"

यहाँ 'भजन' एवं 'भज्यौ' शब्दों का एक से अधिक बार अलग–अलग अर्थों में प्रयोग होने के कारण यहाँ यमक अलंकार है।

2. सजना है मुझे सजना के लिए।

सजना – अलंकृत होना, सजना – प्रियतम।

3. दीपक ले दीपक चली, कर दीपक की ओट।

जे दीपक दीपक नहीं, दीपक करता चोट।।

दीपक – स्त्री, दीप, पर्दा, दीप, जलना, दीप अर्थात् एक स्त्री अपने हाथ में एक जलता हुआ दीप लेकर जा रही है। वह दीप कहीं बुझ नहीं जाये, इसलिए उसने साड़ी के पल्लू (पर्दे) की ओट कर रखी है, क्योंकि यदि दीपक जलता हुआ नहीं रहता है तो बूझा हुआ दीपक हृदय पर चोट करता है। (अशुभता का प्रतीक माना जाता है।)

4. "दीरघ सांस न लेई दुःख, सुख सोई न मूल।

दई–दई क्यों करत है, दई–दई कबूल।।"

प्रथम व द्वितीय 'दई' का अर्थ – हे ईश्वर, हे ईश्वर

तृतीय 'दई' का अर्थ – विधाता (ब्रह्मा)

चतुर्थ 'दई' का अर्थ – दिया है (देना क्रिया)

5. "तौ पर वारौं उरबसी, सुनु राधिके सुजान।

तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान।।"

पहले व तीसरे 'उरबसी' का अर्थ – उर्वशी नामक अप्सरा दूसरे 'उरबसी' का अर्थ – उर (हृदय) में बसने वाली।

6. ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी।

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर स्हाती है।

कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं।

तीन बेर खाती थी वो तीनि बेर खाती हैं।

भूषन सिंथिल अंग, भूषन सिंथिल अंग।

बिजन डुलाती ते वे विजन डुलाती है।

'भूषन' भनत सिवराज वीर तोरे त्रास।

नगन जडातीं ते वे नगन जडाती हैं।

मन्दर – महल/पर्वत

बेर – समय (बार)/झाडी का फल (बोर)

नगन – हीरे जवाहरात/वस्त्रहीन

भूषन – आभूषण/भूमि पर शयन

विजन – पंखा/जंगल

7. मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ विदेह विदेह विसेखी।।

प्रथम 'विदेह' – महाराज जनक।

द्वितीय 'विदेह' – देह रहित अर्थात् सुधबुध भूलना।

8. लाल दुपट्टा मलमल का, कि दिल मेरा मलमल गया।

मलमल – वस्त्र विशेष, मलमल – मलीन होना, (पछतावा)।

9. कबीरा सोइ पीर है, जे जानहिं पर पीर।

जे पर पीर न जानहिं, वे काफिर बेपीर।।

10. खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।

हिन्दी साहित्य वेबसाइट

आक कली न रली करै, अली अली जियजानि।।

11. काली घटा का घमण्ड घटा, नभ मण्डल तारक वृंद खिले।

(ब) सभंग यमक – जब किसी पद में किसी शब्द के टुकडे करने पर ही अन्य शब्द के समान आवृत्ति दिखलायी पडती है तो वहाँ सभंग यमक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1. 'मचलते चलते ये जीव हैं, दिवस में वस में रहते नहीं।

विमलता मल ताप हटा रही, विचरते चरते सुख से सभी।।'

प्रस्तुत पद में 'मचलते', 'दिवस', 'विचरते' एवं 'विमलता' शब्दों के टुकडे करने पर इनकी क्रमशः 'चलते', 'वस', 'चरते', एवं 'मलता' शब्दों से आवृत्ति (समानता) दिखलायी पड जाती है एवं इनके अलग–अलग अर्थ प्रकट हो रहे हैं। अतएव यहाँ सभंग यमक अलंकार माना जाता है।

अन्य उदाहरण –

1. फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में, हो जाएँ द्रुत अन्तर्धान।
2. कुमोदिनी मानस मोदिनी कहीं।
3. निबल के बल राम हैं।
4. मचलते चलते हो तुम वृथा।
5. कहा भयो जौ तूँ भटू, गुनगनमय सब देह।

   जोबनवारी तौ सफल, जो बनवारी नेह।।
6. बरनते बरन प्रीति बिलगाती,

   ब्रह्म जीव सम सहज संघाती।
7. यों परदे की इज्जत परदेसी के हाथ बिकानी थी।
8. जगमग जगमग हम जग का मग,

   ज्योतित प्रति पग करते जगमग।
9. रसिकता सिकता सम हो गई।
10. आयो सखि सावन विरह सरसावन,

    लग्यो है बरसावन, सलिल चहुँ ओर तें।
11. फूल रहें हैं फूलकर फूल उपवन में।
12. हरिनी के नैनन तें हरि नीकै ये नैन।
13. मोहन अब मन माँहि है,

    मोह न अब मन माँहि।

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

रूपक अलंकार

रूपक का अर्थ– रूप देना

परिभाषा – जब किसी पद में उपमान एवं उपमेय में कोई भेद नहीं रह जाता है अर्थात् उपमेय में उपमान का निषेधरहित(अभेद आरोप) आरोपण कर दिया जाता है इसमें वाचक और साधारण धर्म शब्द नहीं होते है। वहाँ रूपक अलंकार माना जाता है।

अर्थात् जब एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाये अर्थात् जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप दिया जाये तो रूपक अलंकार होता है।

आरोप क्या है ?

जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार रखा जाए, कि दोनों में कोई भेद न रहे। अर्थात उपमेय उपमान का रुप धारण कर लेता है।

उदाहरण –

- ✓ **मुख कमल है। (रूपक अलंकार)**
- ✓ **मुख कमल के समान सुन्दर है (उपमा अलंकार)**

1. 'मुख कमल है।'

इस उदाहरण में मुख पर कमल का आरोप किया गया है, अर्थात् मुख को कमल का रूप दिया गया है, या यों कहिये कि मुख को कमल बना दिया गया है।

2. 'चरन–सरोज पखारन लागा।'

यहाँ 'चरणों' (उपमेय) में 'सरोज' (उपमान) का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

3. "अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन–मंदिर में विहरें।"

यहाँ 'मन–मंदिर' पद में रूपक अलंकार है, क्योंकि यहाँ मन को मंदिर रूप में मान लिया गया है। इस प्रकार उपमेय (मन) में उपमान (मंदिर) का निषेधरहित (अभेद) आरोप होने के कारण यहाँ रूपक अलंकार हैं।

पहचान – जब किसी पद का भावार्थ ग्रहण करने पर दो पदों के बीच में 'रूपी' शब्द की प्राप्ति होती है तो वहाँ रूपक अलंकार माना जाता है।

रूपक अलंकार के भेद :– रूपक अलंकार के मुख्यतः दो भेद होते है :–

(1) अभेद रूपक (2) तद्रूप रूपक

अभेद रूपक में उपमेय और उपमान एक दिखाये जाते हैं, उनमें कोई भी भेद नहीं होता है; जबकि तद्रुप रूपक में उपमान, उपमेय का रूप तो धारण करता है, पर एक नहीं हो पाता। उसे 'और' या 'दूसरा' कहकर व्यक्त किया जाता है।

(1) अभेद रूपक :–

अभेद रूपक के भी पुनः निम्न तीन उपभेद कर दिये जाते हैः–

(अ) सांग रूपक (ब) निरंग रूपक (स) परम्परित रूपक

(अ) सांग रूपक :–

जब किसी पद में उपमान का उपमेय में अंगों या अवयवों सहित आरोप किया जाता है तो वहाँ सांगरूपक अलंकार माना जाता है। दूसरे शब्दों में जब उपमेय को उपमान बनाया जाये और उपमान के अंग भी उपमेय के साथ वर्णित किये जाएं तब सांगरूपक अलंकार होता है।

इस रूपक में जिस आरोप की प्रधानता होती है, उसे 'अंगी' कहते हैं। शेष आरोप गौण रूप से उसके अंग बन कर आते है।

सामान्य पहचान के लिए जब किसी पद में एक से अधिक स्थानों पर रूपक की प्राप्ति होती है तो वहाँ सांगरूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1. "उदित उदयगिरि– मंच पर, रघुवर बाल–पतंग।

बिकसे संत – सरोज सब, हरषे लोचन–भृंग।।"

उपमेय	**उपमान**
सीता स्वयंवर मंच	उदयगिरि
रघुवर (राम)	बाल–पतंग (बाल सूर्य)
संत	सरोज (कमल–वन)
लोचन	भृंग (भ्रमर)

जनक सभा में रखे गये धनुष का वर्णन है, जिसे तोड़ने के लिए श्रीराम मंच पर चढ़ गये हैं – कवि ने उसी दृश्य को सांगरूपक के द्वारा निरूपित किया है। प्रस्तुत पद में चार स्थानों पर रूपक की प्राप्ति हो रही है। इस प्रकार अंगों सहित रूपक की प्राप्ति होने के कारण यहाँ सांगरूपक अलंकार है।

2."बीती विभावरी जाग री।

अम्बर–पनघट में डूबो रही तारा–घट उषा नागरी।।"

उपमेय	**उपमान**
नागरी (नगर में रहने वाली)	उषा
घट	तारा
पनघट	अम्बर

3."नारि–कुमुदिनी अवध सर रघुवर विरह दिनेश।

अस्त भये प्रमुदित भई, निरखि राम राकेश।।"

उपमेय	**उपमान**
अयोध्या की नारी	कुमुदिनी
अयोध्या (अवध)	सर (तालाब)
रघुवर विरह (राम का वियोग)	दिनेश (सूर्य)

राम	राकेश (चन्द्रमा)

4.''रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।

मंद–मंद आवतु चल्यो, कुंजर कुंज समीर।।''

उपमेय	**उपमान**
कुंजसमीर	कुंजर (हाथी)
घंटावली	भृंग (भ्रमर)
मधुनीर	दान (मदजल)

5.''छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोई बहुरंग कमल कुल सोहा।।

अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरंद सुवासा।।''

उपमेय	**उपमान**
रामचरितमानस के दोहा, सोरठा आदि छंद	बहुरंगे कमल समूह
उनका अनुपम अर्थ	पराग
उनका सुन्दर भाव	मकरंद
उसकी सुन्दर भाषा	सुगंध

6. ''सखि नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा तरता–तरता।

अब तारक मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता–चरता।।''

उपमेय	**उपमान**
नीला आकाश	सरोवर
सूर्य	हंस
तारक (तारे)	मौक्तिक (मोती)

7. ''नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।

लोचन मग पद जंत्रिका, प्राण जाँहि केहि बाट।।''

उपमेय	**उपमान**
नाम	पाहरू
ध्यान	कपाट
लोचनमग	पदजंत्रिका
प्राण	वर्णित नहीं है

नोट – प्रस्तुत पद में एकदेशविवर्ती सांगरूपक अलंकार है। सांगरूपक अलंकार के जिस पद में सभी उपमेयों के लिए उपमान मिल जाते हैं तो वहाँ समस्तवस्तुविषयक सांग रूपक होता है एवं जब किसी पद में किसी एक उपमेय के लिए उपमान वर्णित नहीं होता है तो वहाँ एकदेशविवर्तीसांगरूपक माना जाता है।

प्रस्तुत पद में नाम, ध्यान, एवं लोचनमग उपमेयों के लिए तो क्रमशः पाहरु, कपाट एवं पदजंत्रिका उपमान हैं, परन्तु 'प्राण' उपमेय के लिए कोई 'उपमान' वर्णित नहीं है, अतः यहाँ एकदेशविवर्तीसांगरूपक है।

8. "शिशुता की निसा सिरानी, उग छाया यौवन दिनकर।

छवि विलसित तन सरवर में, दो सरसिज लसै मनोहर।।"

उपमेय	**उपमान**
शिशुता	निशा
यौवन	दिनकर
तन	सरोवर
दो सरसिज	वर्णित नहीं है।

9. "ऊधौ! मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा।

शोभा देती अमित उसमें कल्पना–क्यारियाँ थीं।

न्यारे–न्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।

उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा थे।।"

यहाँ यशोदा के 'हृदय' (उपमेय) को 'उद्यान' (उपमान) के रूप में कथित किया गया है। साथ ही विशेष बात यह है कि 'हृदयतल' को 'उद्यान' का रूपक बनाते समय कवि ने 'हृदय' के उपमेय पक्ष पर 'उद्यान' के (उपमान पक्ष के) अनेक अंगों का आरोप कर दिया है। दोनों पक्षों का विवरण इस प्रकार है–

उपमेय	**उपमान**
यशोदा का हृदय	उद्यान
कल्पना	क्यारियाँ
भाव	कुसुम
उत्साह	विटपी (वृक्ष)

10. "खडग बिजु चमकै चहुँ ओरा। बूँद बान बरसहिं घनघोरा।"

उपमेय – खडग व बान **उपमान** – बीजु (बिजली) व बूँद

11."बढ़त–बढ़त सम्पत्ति सलिल मन सरोज बढ़ि जाय।

घटत–घटत फिरि ना घटै, तरु समूल कुम्हलाय।।"

12."जितने कष्ट कंटकों में है, जिनका जीवन सुमन खिला।

गौरव ग्रंथ उन्हें उतना ही, यत्र तत्र सर्वत्र मिला।।"

13. "डारे ठोङी–गाङ, गहि नैन बटोही मारि।

चिलक चौंध में रूप–ठग, हाँसी फाँसी डारि।।"

(ब) निरंग रूपक :–

जब किसी पद में अंगों या अवयवों से रहित उपमान का उपमेय में आरोपण किया जाता है तो वहाँ निरंग रूपक अलंकार होता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में केवल एक जगह रूपक अलंकार की प्राप्ति होती है तो वहाँ निरंग रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण :–

1."चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे।"

प्रस्तुत पद केवल एक जगह (चरण–कमल अर्थात् कमल रूपी चरण) रूपक अलंकार है। इस प्रकार अंगों के बिना रूपक की प्राप्ति होने के कारण यहाँ निरंग रूपक अलंकार है।

2."प्रियपति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?

दुख–जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।"

यहाँ पर केवल एक जगह 'दुख' उपमेय में 'जलनिधि' उपमान का आरोप किया गया है। अतः अंग रहित आरोपण होने के कारण यहाँ निरंग रूपक अलंकार है।

3."अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन–मन्दिर में विहरें।।"

4. पायो री मैंने राम रतन धन पायो।"

5. "अवसि चलिय बन राम पहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।

सोक–सिंधु बूङत सबहिं, तुम अवलंबन दीन्ह।।"

6."हरि मुख पंकज, भ्रुव धनुष, खंजन लोचन मित।

बिंब अधर कुंडल मकर, बसे रहत मो चित्त।।"

रूपक पद	उपमेय	उपमान
हरिमुख पंकज	हरिमुख	पंकज
भ्रुव धनुष	भ्रुव	धनुष
खंजन लोचन	लोचन	खंजन
बिंब अधर	अधर	बिंब
कुंडल मकर	कुण्डल	मकर

प्रस्तुत पद में रूपक अलंकार तो पाँच जगह प्रयुक्त हुआ है, परन्तु इनमें जो उपमान हैं, उनका परस्पर कोई संबंध नहीं है। इस प्रकार उपमानों का अंग रहित प्रयोग होने के कारण यहाँ भी निरंग रूपक अलंकार है।

7."हैं शत्रु भी यों मग्न, जिनके शौर्य–पारावार में।"

8.''चरण–कमल वंदौ हरिराई।''

9.''हरि मुख मृदुल मयंक''

यहाँ मुख को चन्द्रमा बनाया गया है।

10.''अंगना अंग से लिपटे भी, आतंक अंक पर काँप रहे हैं।''

11.''राम विरह सागर महं भरत मगन मन होत।''

(स) परम्परित रूपक :–

जब किसी पद में कम से कम दो रूपक अवश्य होते हैं तथा उनमें से एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती हैं तो वहाँ परम्परित रूपक अलंकार माना जाता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में कम से कम दो जगह आरोपण किया जाता हैं तथा उनमें एक आरोप दूसरे आरोप का कारण बनता है अथवा जब एक रूपक को हटा लिये जाने पर दूसरा रूपक स्वतः लुप्त हो जाता है तो वहाँ परम्परित रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1.''जय जय जय गिरिराज किशोरी।

जय महेश मुख चन्द्र चकोरी।।''

प्रस्तुत पद में भगवान महेश (शिव) के मुख को चन्द्र के रूप में तथा पर्वतराजपुत्री पार्वती को चकोरी के रूप में माना गया है। चन्द्रमा के होने पर ही चकोरी का अस्तित्व होता है। यदि यहाँ महेश के मुख को चन्द्र नहीं माना जाये तो पार्वती को भी चकोरी नहीं माना जायेगा। अतः एक रूपक दूसरे रूपक का कारण होने के कारण यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है।

2. ''राम कथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ावन हारी।।''

प्रस्तुत पद में रामचरितमानस की कथा को सुन्दर ताली (हाथों से बजायी जाने वाली ताली) के रूप में तथा हमारे हृदय के संसय को विहग (पक्षी) के रूप में माना गया है। जैसे – ताली के बजाने से पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे ही रामकथा के सुनने से हृदय के सभी संशय दूर हो जाते हैं।

यदि यहाँ 'रामकथा' को 'ताली' नहीं माना जाये तो 'संशय' को भी 'पक्षी' रूप में नहीं माना जायेगा। इस प्रकार एक रूपक दूसरे रूपक का कारण होने के कारण यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है।

3.''राम कथा कलि–पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी।।''

प्रस्तुत पद में कलियुग को पन्नग (सर्प) के रूप में तथा रामकथा को भरनी (सर्पविष उतारने का मंत्र) के रूप में माना गया है अर्थात् जिस प्रकार भरनी (मंत्र) से सर्प का विष दूर हो जाता है, उसी प्रकार रामकथा सुनने से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।

दूसरी पंक्ति में विवेक में अग्नि का आरोपण तथा रामकथा में अरणी (आग उत्पन्न करने वाली लकड़ी) का आरोपण किया गया है। अर्थात् जिस प्रकार अरणी से आग उत्पन्न होती है, उसी प्रकार रामकथा से विवेक उत्पन्न होता है। यहाँ भी यदि विवेक को पावक (आग) नहीं माना जाये तो रामकथा को भी अरणी नहीं माना जा सकता है।

यहाँ दोनों पंक्तियों में एक रूपक दूसरे रूपक का कारण होने से इनमें परम्परित रूपक अलंकार है।

इस प्रकार एक ही पद में दो–दो जगह परम्परित रूपक होने से इसे 'मालारूप परम्परित रूपक' भी कहते हैं।

4.''आशा मेरे हृदय मरु की मंजु मंदाकिनी है।''

प्रस्तुत पद में हृदय को मरु के रूप में तथा आशा को मंदाकिनी के रूप में माना गया है। ये दोनों रूपक एक–दूसरे से आबद्ध होने के कारण यहाँ भी परम्परित रूपक अलंकार है।

5.''बाडव ज्वाला सोती थी, इस प्रणय सिंधु के तल में।

प्यासी मछली सी आँखें थीं, विकल रूप के जल में।।''

यहाँ आँखों में मछली का एवं रूप में जल का आरोपण एक दूसरे से जुड़ा हुआ है, अतः यहाँ परम्परित रूपक है।

6. ''हृदय–गगन में रूप–चन्द्रिका बनकर उतरो मेरे।''

7. ''प्रेम अतिथि है खड़ा द्वार पर हृदय कपाट खोल दो तुम।''

8. ''नगर–नगर अपार, महा मोह–तम मित्र से।

तृष्णा–लता कुठार, लोभ–समुद्र अगस्त्य से।।''

9. ''दो आँसू तारक चख–नभ में अकस्मात् ही टूट पड़े।''

10. ''उदयो ब्रज–नभ आइ यह हरि–मुख मधुर मयंक।

यहाँ पहले ब्रज को नभ बनाया। फिर हरि–मुख को मयंक बनाया। दूसरे रूपक से पहला रूपक जुड़ा हुआ है।

11. रविकुल–कैरव–विधु रघुनायक।

यह भी दो रूपक परस्पर जुड़े हैं। रविकुल को कैरव और रघुनायक को विधु बनाया गया है, पर रघुनायक को विधु इसलिए बनाया है कि पहले रविकुल को कैरव बना चुके थे। रघुनायक और विधु का रूपक रविकुल और कैरव रूपक पर आश्रित है।

(2) तद्रूप रूपक :–

जब किसी पद में उपमेय को उपमान के दूसरे रूप में स्वीकार किया जाता है; वहाँ तद्रुप रूपक अलंकार माना जाता है।

पहचान के लिए जब किसी पद में रूपक के साथ दूसरा, दूसरी, दूसरो, दूजा, दूजी, दूजो, अपर अथवा इनके अन्य समानार्थी शब्दों का प्रयोग हो रहा हो तो वहाँ तद्रूप रूपक अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1. ''तू सुंदरि शचि दूसरी, यह दूजो सुरराज।।''

प्रस्तुत पद में नायक को दूसरे इन्द्र (सुरराज) के रूप में तथा नायिका को दूसरी इन्द्राणी (शची) के रूप में स्वीकार किया गया है, अतः यहाँ तद्रूप रूपक अलंकार है।

2.''अपर धनेश जनेश यह, नहिं पुष्पक आसीन।''

प्रस्तुत पद में जनेश (राजा) को दूसरे धनेश (कुबेर) के रूप में माना गया है, अतः यहाँ तद्रूप रूपक अलंकार है।

3.''अवधपुरी अमरावती दूजी।।''

दशरथ दूजो इन्द्र मही पर।

4. बल–विभव में कुरुराज सचमुच दूसरा सुरराज है।

यहाँ कुरुराज (दुर्योधन) को सुरराज (इन्द्र) बनाया पर दूसरा इन्द्र है यह कहकर भेद कहा गया है।

5. ''एक जीभ के लछिमन दूसर सेस।''

6. ''दृग कुमुदन को दुखहरन, सीत करन मन देस।

यह बनिता भुवलोक की, चन्द्रकला सुभ बेस।।''

7. ''लगति कलानिधि चाँदनी, निसि ही मैं अभिराम।

दीपति वा मुखचन्द की, दिपति आठहूँ जाम।।''

8. ''नहिं रतनाकर ते भयो, चलि देखौ निरसंक।

याते दूजो कहत हौं, वाको बदन मयंक।।''

9. 'मुख दूसरा चन्द्रमा है।'

यहाँ मुख को चन्द्रमा बनाया है, पर दूसरा चन्द्रमा है (वही चन्द्रमा नहीं) यह कहकर कुछ भेद रखा गया है।

10. 'यह राजा दूसरा इन्द्र है।'

यहाँ राजा को इन्द्र बनाया है पर दूसरा इन्द्र है यह कहकर कुछ भेद कर दिया गया है।

हिंदी साहित्य गेहन

विभावना अलंकार

लक्षणः– ''विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्य जन्म चेत्।''

हमारे द्वारा जो कोई भी कार्य किया जाता है, उनके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य निहित होता है, परन्तु जब किसी पद में वास्तविक कारण के बिना ही किसी कार्य का होना पाया जाता है तो वहाँ विभावना अलंकार माना जाता है। पहचान के लिए जब किसी पद किसी पद में 'बिना, बिनु, बिन, रहित' आदि शब्दों का प्रयोग होता है तो वहाँ विभावना अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

''बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना।

बिनु कर करम करै विधि नाना।

आनन रहित सकल रस भोगी।

बिनु बानी बकता बङ जोगी।।

प्रस्तुत पद में परम पिता परमेश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए कवि तुलसीदासजी कहते हैं कि वह परम पिता परमेश्वर बिना पैरों के चलता है, बिना कानों के सुनता हैं, हाथों के बिना ही अनेक कार्य करता है, मुख से रहित होने पर भी समस्त पदार्थों का उपभोग करता है तथा जिह्वा के बिना भी बहुत बङा वक्ता है।

यहाँ संबंधित कारणों (पैर, कान, हाथ, मुख, जिह्वा) के बिना ही चलने, सुनने, कर्म करने, रस–उपभोग करने व बोलने के कार्य हो रहे हैं, अतः यहाँ विभावना अलंकार माना जाता है।

''निदंक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय।

बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय।।''

विभावना के भेद – विद्वान् आचार्यों के द्वारा विभावना के मुख्यतः निम्न छह भेद माने गये हैं–

प्रथम – कारण के अभाव में भी कार्य का होना।

द्वितीय – अपूर्ण या अपर्याप्त कारण होने पर भी कार्य का होना।

तृतीय – बाधक परिस्थितियों के होने पर भी कार्य का होना।

चतुर्थ – वास्तविक कारण के स्थान पर अन्य कारण से कार्य होना।

पंचम – विरोधी कारण से कार्य होना।

षष्ठ – कार्य से कारण की उत्पत्ति होना।

उदाहरण –

– प्रथम विभावना (कारण के अभाव में भी कार्य का होना)

''सखि इन नैननि तें घन हारे।

बिनहि रितु बरसत निसि–बासर, सदा मिलन दोउ तारे।।''

यहाँ वर्षा ऋतु के अभाव में भी नेत्रों से वर्षा होने का कार्य हो रहा है, अतः यहाँ प्रथम विभावना है।

''मुनि तापस जिन तें दुख नहहीं।

ते नरेश बिनु पावक दहहीं।।''

यहाँ अग्निरूपी कारण के बिना ही जलना रूपी कार्य हो रहा है, अतः यहाँ प्रथम विभावना है।

''लाभ भरी अँखियाँ बिहँसी, बलि बोल कहे बिन उत्तर दीन्हीं।''

''साहि तनै सिवराज की, ससहज टेव यह ऐन।

अनरीझै दारिद हरै, अनखीझै रिपु सैन।।''

'शून्य भित्ति पर चित्र, रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।।''

– द्वितीय विभावना (अपूर्ण या अपर्याप्त कारण होने पर भी कार्य का होना)

''तोसो को सिवाजी, जेहि दो सौ आदमी सों जीत्यो।

जंग सरदार सौ हजार असवार को।''

प्रस्तुत पद में शिवाजी के द्वारा दो सौ आदमियों से ही सौ हजार असवारों के सरदार को जीतने का वर्णन किया गया है, जो अपर्याप्त कारण प्रतीत होता है, अतः यहाँ विभावना है।

''आक धतूरे के फूल चढाये ते रीझत हैं तिहुँ लोक के साँई।''

यहाँ मात्र आक व धतूरे के महत्त्वहीन (सुगंधरहित) फूल चढ़ाकर ही त्रिलोकेश्वर महादेव को प्रसन्न करने की बात कही गई है, अतः यहाँ द्वितीय विभावना है।

''तिय कत कमनैती पढ़ी, बिनु जिह भौंह कमान।

चल चित बेधत चूकत नहिं, बंक विलोकनि बान।।''

प्रस्तुत पद में नायिका की उस विचित्र तीरंदाजी का वर्णन किया गया है जो अपर्याप्त कारणों (बिना डोरी का धनुष व टेढ़े–मेढ़े बाण) से ही रसिकों के मन को बेध रही है, अतः यहाँ द्वितीय विभावना है।

''काम कुसुम धनु सायक लीन्हें।

सकल भुवन अपने बस कीन्हें।।''

प्रस्तुत पद में फूलों के धनुष–बाण धारण किये हुए कामदेव के द्वारा समस्त विश्व को वश में करने का वर्णन किया गया है जो अपर्याप्त कारण प्रतीत होता है। अतः यहाँ द्वितीय प्रकार की विभावना है।

''मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्ब।

महामत्त गजराज जहँ, बस कर अंकुश खर्ब।।''

– तृतीय विभावना (बाधक परिस्थितियों के होने पर भी कार्य का होना)

नैना नैक न मानहीं, कितो कहौं समुझाय।

ये मुँह जोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाय।।

अथवा

''लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।

ये मुँह जोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं।।"

प्रस्तुत पदों में रोकने पर भी नेत्रों के न मानने का वर्णन किया गया है अर्थात् बाधक परिस्थिति होने पर भी कार्य उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ तृतीय प्रकार की विभावना है।

"लाखन ओट करो किन घूँघट।

चंचल नैन छिपै न छिपाये।।"

यहाँ घूँघट रूपी प्रतिबंध होने पर भी नेत्र छिप नहीं पा रहे हैं, अतः यहाँ तृतीय विभावना है।

"जदपि बसे हरि जाय उत, आवन पावत नांहि।

मिलत मोहिं नित तदपि सखि, प्रतिदिन सपने मांहि।।"

प्रस्तुत पद में कृष्ण का अन्यत्र बस जाना उनके मिलने में प्रतिबंधक या रूकावट है, फिर भी वे गोपिका से सपने में मिल ही जाते हैं, जो कार्य सिद्धि का सूचक है। इस प्रकार बाधक परिस्थिति होने पर भी कार्योत्पत्ति होने के कारण यहाँ तृतीय प्रकार की विभावना है।

चतुर्थ विभावना (वास्तविक कारण के स्थान पर अन्य कारण से कार्य का होना)

"देखो नील कमल से कैसे, तीखे तीर बरसते हैं।"

यहाँ नीलकमल से तीखे तीर बरसने के कार्य का वर्णन किया गया है जो उनका वास्तविक कारण नहीं है, अतः यहाँ चतुर्थ प्रकार की विभावना है।

"विद्रुम के संपुट में उपजे मोती के दाने कैसे?

यह शुक फलजीवी करता चुगने की मुद्रा ऐसे।।"

मोती तो सीप मछली से उपजते हैं विद्रूम संपुट से नहीं, अतः यहाँ चतुर्थ प्रकार की विभावना है।

"क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुण्डन में।

कारे घन उमङि अँगारे बरसत हैं।"

यहाँ काले बादलों से अंगारे बरसाने का कार्य होने का वर्णन किया गया है जो उसका वास्तविक कारण नहीं हैं, अतः यहाँ चतुर्थ विभावना है।

"भयो कंबु ते कंज इक, सोहत सहित बिकास।

देखहु चम्पक की लता, देति कमल सुखवास।।"

यहाँ कंबु (शंख) से कमल (कंज) की उत्पत्ति होना तथा चंपकलता से कमल की सुगंध फैलाने का कार्य होने का वर्णन किया गया है, जो उनका वास्तविक कारण नहीं है।

"चंपकलतिका से उङी गहब गुलाब सुबास।

रैन अमावस से लखो, प्रगट्यो परत प्रकास।।"

यहाँ चंपकलता को गुलाब की गंध का तथा अमावस्या की रात्रि को प्रकाश की उत्पत्ति का कारण माना गया है, जो उनकी उत्पत्ति का वास्तविक कारण नहीं है।

"हँसत बाल के बदल में, यों छबि कधु अतूल।

फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल।।"

यहाँ चंपकलता से चमेली के फूल झड़ने की बात कही गई है, जो इसका वास्तविक कारण नहीं है, अतः यहाँ चतुर्थ प्रकार की विभावना है।

– पंचम विभावना (विरोधी कारण से कार्य का होना)

"पौन से जागत आगि सुनी ही पै,

पानी सों लागत आजु मैं देखी।"

प्रस्तुत पद में पानी जैसे विरोधी कारण से भी आग लगने के कार्य का वर्णन किया गया है, अतएव यहाँ पंचम प्रकार की विभावना है।

"सिय हिय सीतल सी लगे, जरत लंक की झार।"

यहाँ लंका को जला देने वाली आग (झार) सीता के हृदय को शीतल लग रही है जो एक विरोधी कारण है, अतः यहाँ पंचम प्रकार की विभावना है।

"वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगे अँखियान लुनाई।।"

यहाँ आँखों की लवणता के भी मीठी लगने का वर्णन किया है, जो एक विरोधी कारण है।

"लाल तिहारे रूप की, निपट अनोखी बान।

अधिक सलोनो है तऊ, लगत मधुर अँखियान।।"

यहाँ अधिक साँवला रंग भी आँखों को मधुर लग रहा है, जो विरोधी कारण प्रतीत होता है।

"आग हूँ जिससे ढलकते बिन्दु हिमजल के।"

यहाँ आग से हिमकणों के ढलकने की बात कही गयी है, जो एक विरोधी कारण है।

"चुरत चाँदनी में अरी, विरहं व्याकुला बाल।

बूझत कहा रसाल तुम, वा विरहिन को हाल।।"

प्रस्तुत पद में शीतल चाँदनी में भी वियोगिनी बाला के जलने का वर्णन किया गया है, जो एक विरोधी कारण है।

– षष्ठ विभावना (कार्य से कारण की उत्पत्ति होना)

भयो सिन्धु तें विधु सुकवि, बरनत बिना विचार।

उपज्यो तो मुख इन्दु ते, प्रेम पयोधि अपार।।

प्रस्तुत पद में कवि की कल्पना में मुखचन्द्र के प्रेम सागर की उत्पत्ति का वर्णन किया है, जो कार्य से कारण की उत्पत्ति होने का भाव सूचित कर रहा है, अतः यहाँ छठे प्रकार की विभावना है।

"देखो या विधुवदन में, रस सागर उमगात।"

यहाँ पर भी चन्द्रमुख से रस के समुद्र की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, जो कार्य से कारण की उत्पत्ति का द्योतक है।

''कमल जुगल से निकलता, देखो निर्मल नीर।''

प्रस्तुत पद में कमल से जल की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, जो कार्य से कारण की उत्पत्ति का द्योतक है।

''हाय उपाय न जाय कियो, ब्रज बूङत है बिनु पावस पानी।

धारन तें अँसुवान की है, चख मीनन तें सरिता सरसानी।।''

प्रस्तुत पद में मीन से सरिता की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, जो कार्य से कारण की उत्पत्ति का द्योतक है।

हिंदी साहित्य रेहब

सन्देह अलंकार

सन्देह अलंकार – जब किसी पद में समानता के कारण उपमेय में उपमान का सन्देह उत्पन्न हो जाता है और यह सन्देह अन्त तक बना रहता है तो वहाँ सन्देह अलंकार माना जाता है।

अर्थात् जब सादृश्य के कारण एक वस्तु में अनेक अन्य वस्तु के होने की सम्भावना दिखायी पड़े और निश्चय न हो पाये, तब संदेह अलंकार माना जाता है।

अर्थात् जहाँ सत्य, असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक या अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाए और यह संशय बना ही रहे कि यह अमुक वस्तु है अथवा अमुक, **जैसे–**

'तरनि–तनूजा–तट–तमाल–तरुवर बहु छाये।.....

किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज–निज सोभा।।'

यहाँ यह संदेह है कि यह वस्तु (तरुवरों का झुकना) वास्तव में क्या है? जल का स्पर्श है या जल–दर्पण में मुख देखना है।

टिप्पणी – कि, किंधौ, या, अथवा आदि 'अथवा' वाचक शब्द या शब्दों के योग से संदेह अलंकार को पहचानने में सुविधा होती है।

उदाहरण –

1. वन देवी समझूँ तो वह होती है भोली भाली,

तुम्ही बताओ अतः कौन तुम, हे रमणी! रहस्यवाली।।"

प्रस्तुत पद में रूपपरिवर्तिता शूर्पणखा को देखकर लक्ष्मणजी यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि वह किसी मानव की स्त्री है अथवा किसी दानव की स्त्री है अथवा कोई वनदेवी है तथा अन्त तक भी अनिर्णय की स्थिति बनी हुई है, अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

2. "सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।

सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।।"

महाभारत काल में द्रौपदी के चीर हरण के समय उसकी बढ़ती साड़ी (चीर) को देखकर दुःशासन के मन में यह संशय उत्पन्न हो रहा है कि यह साड़ी के बीच नारी (द्रौपदी) है या नारी के बीच साड़ी है अथवा साड़ी नारी की बनी हुई है या नारी साड़ी से निर्मित है।

इस प्रकार अन्त तक संशयात्मक स्थिति उत्पन्न होने के कारण यहाँ सन्देह अलंकार है।

3. बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानौ

लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,

बीररस बीर तरवारि सी उधारी है।

तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप

कैधौं चली मेरु ते कृसानु–सरि भारी है।

देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,

कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है।।

4. 'हरि–मुख यह आली! किधौं, कैधौं उयो मयंक?'

हे सखी! यह हरि का मुख है या चन्द्रमा उगा है? यहाँ हरि के मुख को रखकर सखी को निश्चय नहीं होता कि यह हरि का मुख है या चन्द्रमा है। हरि के मुख में हरि–मुख और चन्द्रमा दोनों के होने की सम्भावना दिखायी पड़ती है।

5. बानी के बसन कैधौं बात के बिलास डोले,

कैधौं मुखचंद्र चारु चंद्रिका प्रकास है।

कवि 'मतिराम' कैधौं काम को सुजस,

कै पराग पुंज प्रफुलित सुमन सुबास है।

नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं,

देहवंत प्रगटित हिय को हुलास है।

सीरे करिबे को पिय नैन घनसार कैधौं,

बाल के बदन बिलसत मृदु हास है।।

6. कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं।

राम–लखन सखि! होहि कि नाहीं।।

यहाँ भरत–शत्रुघ्न को देखकर ग्रामों की स्त्रियों को, सादृश्य के कारण, उनके राम–लक्ष्मण होने का संदेह होता है।

7. तारे आसमान के हैं आये महमान बनि,

केशों में निशा ने मुकतावली सजायी है?

बिखर गयो है चूर–चूर ह्वै कै चन्द कैधौं,

कैधौं घर–घर दीप–मालिका सुहायी है?

यहाँ दीप–मालिका में तारावली, मुक्तामाला और चन्द्रमा के चूर्णीभूत कणों का सन्देह होता है।

8. चमकत कैधौं सूर सरजा–दुधारा किधौं

सहर सतारा को सितारा चमकत है?

यह शिवाजी का खड्ग चमक रहा है या सतारा नगर (शिवाजी की राजधानी का भाग्य–सूचक सितारा (नक्षत्र))?

9. कैधौं रितुराज काज अवनि उसाँस लेत,

किधौं यह ग्रीष्म की भीषण लुआर है?

ये ग्रीष्म–ऋतु की भयंकर लू की लपटें हैं या वसन्त के विरह में पृथ्वी अन्तस् से निकलती हुई विरह–दुःख की आहें ?

10. ''कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है, कि श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है?

यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है, कि राहु के कबंध पर कराल केतु तारा हैं?

'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है, कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है?

काली पाटियों के बीच मोहिनी की मांग है, कि ढाल पर खांडा कामदेव का दुधारा है?''

''चमकत कैंधों सूर सूरजा दुधार किंधौ, सहर सतारा को सितारा चमकत है?''

यहाँ छत्रपति शिवाजी का खड्ग चमक रहा है अथवा सतारा नगर (शिवाजी की राजधानी) का भाग्य सूचक सितारा चमक रहा है। इसका संशय बने रहने के कारण यहाँ सन्देह अलंकार है।

11. ये हैं सरस ओस की बूँदें, या हैं मंजुल मोती?

प्रस्तुत पद में हंसिनी अपने सामने छायी ओस की बूँदों को देखती है, परन्तु सादृश्यता के कारण वह यह निर्णय नहीं कर पा रही है कि ये 'ओस की बूँदें' हैं अथवा सुन्दर मोती हैं। इस प्रकार अन्त तक संशय बने रहने के कारण यहाँ सन्देह अलंकार है।

12. ये छींटे हैं उड़ते, अथवा मोती बिखर रहे हैं?

13. ''राधा मुख आलि किधौं, कैधो उग्यो मयंक।''

14. ''कहूँ मानवी यदि मैं तुझको तो वैसा संकोच कहाँ?

कहूँ दानवी तो उसमें है, लावण्य की लोच कहाँ?

वन देवी समझूँ तो वह होती है भोली भाली,

तुम्ही बताओ अतः कौन तुम, हे रमणी! रहस्यवाली।।''

प्रस्तुत पद में रूपपरिवर्तिता शूर्पणखा को देखकर लक्ष्मणजी यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि वह किसी मानव की स्त्री है अथवा किसी दानव की स्त्री है अथवा कोई वनदेवी है तथा अन्त तक भी अनिर्णय की स्थिति बनी हुई है, अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

15. ''की तुम तीन देव महँ कोऊ?

नर नारायण की तुम दोऊ?''

16. ''क्या शुभ्र हासिनी शरद घटा अवनी पर आकर है छायी।

अथवा गिरकर नभ से कोई सुरबाला हुई धराशायी।।''

17. ''तुम हो अखिल विश्व में,

या यह अखिल विश्व है तुममें?

अथवा अखिल विश्व तुम एक? (निराला)''

18. ''निद्रा के उस अलसित वन में, वह क्या भावी की छाया।

दृग पलकों में विचर रही या वन्य देवियों की माया।।''

19. ''बाल गुडी नभ में उडी, सोहति इत उत धावती।

कै अवगाहत डोलत कोऊ, ब्रज रमणी जल लावती।।''

20. ''कोई पुरन्दर की किंकरी है, या किसी सुर की सुन्दरी है।''

21. जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।

की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।।

22. यह मुख है नीले अम्बर में या यह चंद्र विमल है।

अँधेरे में दीप जला, या सर में खिला कमल है।।

23. दायां हाथ लिए था सुरभित, चित्र विचित्र सुमन माला।

टाँग धनुष की कल्पलता पर, मनसिज ने झूला डाला।।

हिंदी साहित्य रेखा

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

उपमा अलंकार

परिभाषा :–

जब किसी पद में दो पदार्थों की समानता को व्यक्त किया जाता है अर्थात् किसी एक सामान्य पदार्थ को किसी प्रसिद्ध पदार्थ के समान मान लिया जाता है तो वहाँ उपमा अलंकार माना जाता है।

अर्थात् जहाँ किसी वर्णित (प्रस्तुत) वस्तु की उसके किसी विशेष गुण, क्रिया, स्वभाव आदि की समानता के आधार पर किसी अन्य (अप्रस्तुत) वस्तु से समानता स्थापित की जाये, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

शाब्दिक विश्लेषण की दृष्टि से उपमा शब्द 'उप+मा' के योग से बना है। यहाँ 'उप' का अर्थ होता है– 'समीप' तथा 'मा' का अर्थ होता है– 'मापना' या 'तोलना' अर्थात् समीप रखकर दो पदार्थों का मिलान करना 'उपमा' के नाम से जाना जाता है।

'उपमा' का सामान्य अर्थ है– 'समानता' या 'तुलना'। अर्थात् उपमा में किसी एक वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाता है, या दूसरे शब्दों में कहें तो एक वस्तु की तुलना किसी दूसरी वस्तु से की जाती है। जैसे – 'मुख कमल के समान सुन्दर है' – कथन में 'मुख' (एक वस्तु) की समानता (तुलना) दूसरी वस्तु 'कमल' से की गयी है, अतः यहाँ उपमा मानी जायेगी।

उदाहरण –

1. "चन्द्रमा–सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

प्रस्तुत पद में सामान्य पदार्थ 'मुख' को सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध पदार्थ 'चन्द्रमा' के समान मान लिया गया है, अतः यहाँ 'उपमा' अलंकार माना जाता है।

उपमा या अर्थालंकारों के अंग :– किसी भी सादृश्यमूलक अर्थालंकार के मुख्यतः निम्न चार अंग माने जाते हैं:–

(1) उपमेय (2) उपमान (3) वाचक शब्द (4) साधारण धर्म

(1) उपमेय :– कवि जिस पदार्थ का वर्णन करता है, उस सामान्य पदार्थ को 'उपमेय' या 'प्रस्तुत पदार्थ' कहा जाता है।

उदाहरण – "चन्द्रमा–सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

उपर्युक्त पद में कवि ने 'मुख' का वर्णन करते हुए उसे चन्द्रमा के समान माना है; अतः यहाँ 'मुख' उपमेय है।

(2) उपमान :– कवि अपने द्वारा वर्णित सामान्य पदार्थ की जिस प्रसिद्ध पदार्थ से समानता व्यक्त करता है अर्थात् जो उदाहरण प्रस्तुत करता है, उसे 'उपमान' या 'अप्रस्तुत पदार्थ' कहा जाता है।

उदाहरण – "चन्द्रमा–सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

उपर्युक्त उदाहरण में कवि ने 'मुख' की समानता (सुन्दरता) 'चन्द्रमा' के साथ प्रकट की है। अतः यहाँ 'चन्द्रमा' उपमान है।

नोटः– संस्कृत में उपमेय को 'प्राकृत' तथा उपमान को 'सम' भी कहते है।

(3) वाचक शब्द :– समानता के अर्थ को प्रकट करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे वाचक शब्द कहलाते है। सा, सी, से, सम, सरिस, इव, जिमि, सदृश, लौं इत्यादि उपमा वाचक शब्द माने जाते है।

उदाहरण – "चन्द्रमा–सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्द्रमा–सा' पद में 'सा' वाचक शब्द है।

(4) साधारण धर्म :– उपमेय (प्रस्तुत पदार्थ) तथा उपमान (अप्रस्तुत पदार्थ) दोनों में जो समान विशेषता या समान लक्षण या समान गुण पाये जाते हैं, उसे साधारण धर्म कहा जाता है।

उदाहरण – "चन्द्रमा–सा कान्तिमय मुख रूप दर्शन है तुम्हारा।"

उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्द्रमा' (उपमान) व 'मुख' (उपमेय) दोनों को 'कान्तिमय' बताया गया है। अतः यहाँ 'कान्तिमय' साधारण धर्म है।

2. 'सुनि सुरसरि सम सीतल बानी।'

उपमेय – बानी (वाणी)

उपमान – सुरसरि (गंगा)

साधारण धर्म – सीतल (ठण्डी / मधुर)

वाचक शब्द – सम

उपमा अलंकार के भेद :– 'उपमा' के मुख्यतः निम्न दो भेद माने जाते हैः–

(1) पूर्णोपमा (पूर्णा+उपमा) (2) लुप्तोपमा (लुप्ता+उपमा)

(1) पूर्णोपमा :– उपमा अलंकार के जिस पद में उपमा के चारों अंग मौजूद रहते हैं; वहाँ पूर्णोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1."राम लखन सीता सहित, सोहत पर्ण–निकेत।
जिमि बस वासव अमरपुर, सची जयन्त समेत।।"

उपमेय – राम–सीता–लखन, पर्ण – निकेत

उपमान – वास्तव (इन्द्र), शची–जयन्त (इन्द्र का पुत्र), अमरपुर (इन्द्रावती नगरी)

साधारण धर्म – सोहत (शोभा पाना)

वाचक शब्द – जिमि (जैसे)

प्रस्तुत पद में उक्तानुसार उपमा के चारों अंग मौजूद हैं, अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

2."मोम सा तन घुल चुका, अब दीप सा दिल जल रहा है।"

उपमेय – तन – दिल

उपमान – मोम – दीप

साधारण धर्म – घुल चुका – जल रहा है

वाचक शब्द – सा –सा

3. "राधा बदन चन्द सो सुन्दर।"

उपमेय – राधा बदन (राधा का मुख)

उपमान – चन्द (चन्द्रमा)

साधारण धर्म – सुन्दर

वाचक शब्द – सो (के समान)

4.''मुख मयंक सम मंजु मनोहर''

उपमेय – मुख

उपमान – मयंक

साधारण धर्म – मंजु मनोहर

वाचक शब्द – सम

5. ''करिकर सरिस सुभग भुजदण्डा''

उपमेय – भुजदण्डा

उपमान – करिकर

साधारण धर्म – सुभग

वाचक शब्द – सरिस

6.''पीपर पात सरिस मन डोला।''

उपमेय – मन

उपमान – पीपर पात

साधारण धर्म – डोला

वाचक शब्द – सरिस

7. ''पहेली सा जीवन है व्यस्त।''

उपमेय – जीवन

उपमान – पहेली

साधारण धर्म – है व्यस्त

वाचक शब्द – सा

8.''हँसने लगे तब हरि अहा। पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया।।''

उपमेय – मुख

उपमान – पूर्णेन्दु

साधारण धर्म – खिल गया

वाचक शब्द – सा

9.''मधुकर सरिस संत गुनग्राही।''

उपमेय – संत

हिन्दी साहित्य सदन

उपमान – मधुकर

साधारण धर्म – गुनग्राही

वाचक शब्द – सरिस

10. ''धनी वज्र गर्जन से बादल।''

''त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं।''

उपमेय – बादल

उपमान – वज्र

साधारण धर्म – गर्जन

वाचक शब्द – से

11. 'मुख कमल जैसा सुन्दर है।'

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि उपमा के चारों अंग विराजमान हैं। अर्थात् इसमें उपमेय 'मुख', उपमान 'कमल', वाचक शब्द 'जैसा' और साधारण धर्म 'सुन्दर' है। चारों अंगों से पूर्ण होने के कारण यहाँ 'पूर्णोपमा' है।

(2) लुप्तोपमा :– उपमा अलंकार के जिस पद में उपमा के चारों अंगों में से कोई भी एक अंग, दो अंग या तीन अंग लुप्त हो जाते हैं तो वहाँ लुप्तोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण – 'मुख कमल जैसा है।'

यहाँ साधारण–धर्म 'सुन्दर' का शब्द द्वारा उल्लेख नहीं किया है, अतः साधारण धर्म नामक एक अंग के लुप्त होने से लुप्तोपमा हुई।

उपमा का जो अंग लुप्त रहता है, उसके आधार पर पुनः इसके चार मुख्य उपभेद कर दिये जाते हैं। **यथा–**

1. उपमेय लुप्त होने पर – उपमेय लुप्तोपमा

2. उपमान लुप्त होने पर – उपमान लुप्तोपमा

3. साधारण धर्म लुप्त होने पर – धर्म लुप्तोपमा

4. वाचक शब्द लुप्त होने पर – वाचक लुप्तोपमा

उदाहरण –

1.''कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा।'' (धर्म लुप्ता)

प्रस्तुत पद में 'वचन' उपमेय है, 'कुलिस' उपमान है तथा 'सम' वाचक शब्द है, परन्तु दोनों के समान धर्म (कठोरता) का कहीं कथन नहीं किया गया है, अतएव यहाँ 'धर्म लुप्तोपमा' अलंकार माना जाता है।

2.''कुलिस कठोर सुनत कटु बानी।

बिलपत लखन सिय सब रानी।।'' (वाचक लुप्ता)

उपमेय – कटु बानी (कडवी बोली), **उपमान** – कुलिस (वज्र), **साधारण धर्म** – कठोर, **वाचक शब्द** – लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा है।

3.''नई लगनि कुल की सकुच, विकल भई अकुलाई

दूहूँ ओर ऐंची फिरिति, फिरकीं लौं दिनु जाइ।।'' (उपमेय लुप्तोपमा)

उपमेय – लुप्त है, **उपमान** – फिरकी

साधारण धर्म – दुहूँ ओर ऐंची फिरती (दोनों ओर खिंची चली जाना) (नई लगनि, कुल की सकुंच)

वाचक शब्द – लौं

अतः यहाँ उपमेय लुप्तोपमा अलंकार है।

4.''तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी।

झाँकी हम झाँकी, बाँकी जुगलकिसोर की।।''(उपमान लुप्ता)

उपमेय – जुगल किशोर की झाँकी, **उपमान** – लुप्त है

साधारण धर्म – बाँकी (सुन्दर), **वाचक शब्द** – ऐसी

यहाँ ऐसी दूसरी न झाँकी कथन के द्वारा 'उपमान' का निषेध किया गया है, अतः यहाँ उपमान लुप्तोपमा अलंकार है।

5. 'चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस।

निरखि न होय अधीन, ऐसो नरनागर कवन।।'' (उपमेय लुप्तोपमा)

उपमेय – लुप्त है, **उपमान** – मीन/पंकज

साधारण धर्म – चंचल/अरुनारे (लाल), **वाचक शब्द** – ज्यों/सरिस

अतः यहाँ 'उपमेय लुप्तोपमा' है।

6. ''कुन्द इन्दु सम देह'' (धर्म लुप्ता)

उपमेय – देह, **उपमान** – कुन्द इन्दु

साधारण धर्म – स्याम/तरुन, **वाचक शब्द** – लुप्त है।

अतः वाचक लुप्तोपमा है।

7.''नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।

करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन।।''

उपमेय – नयन, **उपमान** – नील सरोरुह/अरुन बारिज

साधारण धर्म – स्याम/तरुन, **वाचक शब्द** – लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा है।

8.''तुम्हारी आँखों का आकाश, सरल आँखों का नीलाकाश।

खो गया मेरा मन अनजान, मृगेक्षिणी इनमें खग अज्ञान।।'' (उपमान लुप्तोपमा)

9. ''सुबरन बरन कमल कोमलता, सुचि सुगंध इक होय।

तब तुलनीय होय तव मुख हो, जग अस वस्तु न कोय।।''

उपमेय – मुख, **उपमान** – लुप्त है

हिन्दी साहित्य वेबसाइट

साधारण धर्म – सुबरन बरन, कमल कोमलता, सुचि सुगंध का एकाकार

वाचक शब्द – अस (ऐसी)

उपमा के अन्य भेद

(1) मालोपमा :– जब किसी पद में एक ही उपमेय के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग कर दिया जाता है तो वहाँ मालोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1. "काम–सा रूप प्रताप दिनेश–सा। सोम–सा शील है राम महीप का।।"

प्रस्तुत पद में एक ही उपमेय (राजा राम) के लिए तीन उपमानों (कामदेव, दिनेश अर्थात् सूर्य, सोम अर्थात् चन्द्रमा) का प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ मालोपमा अलंकार है।

2."रूप जाल नंदलाल के, परि कहुँ बहुरि छुटै न।

खंजरीट मृग–मीन से, ब्रज बनितन के नैन।।"

प्रस्तुत पद में एक ही उपमेय (ब्रज बनितन के नैन अर्थात् ब्रज बालाओं की आँखें) के लिए तीन उपमानों (खंजरीट पक्षी, मृग व मीन) का प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ मालोपमा अलंकार है।

3. 'मुख चन्द्र और कमल के समान है।

यहाँ 'मुख' उपमेय के 'चन्द्र' और 'कमल'– ये दो उपमान कहे गये हैं।

4."चन्द्रमा सा कान्तिमय, मृदु कमल सा कोमल महा।

नवकुसुम सा हँसता हुआ, प्राणेश्वरी का मुख रहा।"

5."यह विचार की पुतलिका सी, विषम जगत की प्रतिछाया सी।

विश्व चित्र सी सरित लहरी सी, जीवन सी छल की माया सी।।"

6. "तरुवर के छायावाद सी, उपमा–सी भावुकता–सी।

अविदित भावाकुल भाषा–सी, कटी–छँटी नव कविता–सी।।"

(2) उपमेयोपमा :– जब किसी पद में उपमेय और उपमान दोनों की एक–दूसरे से उपमा दी जाती है अर्थात् एक बार उपमेय को उपमान के समान तथा पुनः उपमान को उपमेय के समान मान लिया जाता है तो वहाँ उपमेयोपमा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1."तो मुख सोहत है ससि सो, अरु ससि सोहत है तो मुख जैसो।"

प्रस्तुत पद में एक बार मुख (उपमेय) को चन्द्रमा (उपमान) के समान तथा पुनः चन्द्रमा (उपमान) को मुख (उपमेय) के समान मान लिया गया है, अतः यहाँ उपमेयोपमा अलंकार है।

2."सब मन रंजन हैं खंजन से नैन आली, नैनन से खंजन हू लागत चपल हैं।

मीनन से महा मनमोहन हैं मोहिबे को, मीन इन ही से नीके सोहत अमल हैं।

मृगन के लोचन से लोचन हैं रोचन ये, मृगदृग इनहीं से सोहे पलापल हैं।

'सूरति' निहारि देखी नीके ऐरी प्यारी जू के, कमल से नैन अरु नैन से कमल हैं।।"

(3) रशनोपमा :– जब किसी पद में उपमान या उपमेय उत्तरोत्तर उपमेय या उपमान होते जाते हैं तो वहाँ रशनोपमा अलंकार माना जाता है।

'रशनोपमा' शब्द 'रशन+उपमा' के योग से बना है। 'रशना' का शाब्दिक अर्थ होता है–करधनी अर्थात् कमर में बाँधा जाने वाला आभूषण (तागड़ी)। जिस प्रकार करधनी में अनेक कड़ियों से गूँथी हुई लड़ियाँ होती हैं, वैसे ही जब किसी पद में उपमेय और उपमान की एक शृंखला सी बना दी जाती है तो वहाँ 'रशनोपमा' अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1.'बच सी माधुरि मूररि, मूरति सी कलकीरति।

कीरति लौं सब जगत में, छाइ रही तव नीति।।"

2. "मति सी नति, नति सी विनतति, विनति सी रति चारु।

रति सी गति गति सी भगति, तो मैं पवन कुमारु।।"

प्रस्तुत पद में पहली उपमा का उपमेय (नति) अगली उपमा के लिए उत्तरोत्तर उपमान बनता हुआ वर्णित किया गया है, अतः यहाँ रशनोपमा अलंकार है।

3. "मुकुर सम विधु सरिस मुख, मुख समान सरोज।"

(4) अनन्वय – जब उपमेय का उपमान न मिल सकने के कारण उपमेय को ही उपमान बना दिया जाय, अर्थात् जब उपमेय की उपमा उपमेय से ही दी जाये तो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

उदाहरण –

1. अब यद्यपि दुर्बल आरत है।

पर भारत के सम भारत है।

यहाँ भारत उपमेय है और उपमान भी वही है, अर्थात् भारत देश इतना महान कि इसकी तुलना में कोई अन्य उपमान मिलता ही नहीं, अतः भारत (उपमेय) की तुलना भी उपमान रूप भारत से ही कर दी गयी है।

2. सुन्दर नन्दकिशोर–से सुन्दर नन्दकिशोर।

सुन्दर नन्दकिशोर के समान सुन्दर नन्दकिशोर ही हैं। उपमान न होने के कारण नन्दकिशोर उपमेय को ही उपमान बना दिया है।

3. निरवधि जनु निरुपम पुरुष,

भरत भरत सम जान।

4. हरि को मुख सखि! हरि–मुख जैसो।

5. मुकति की दाता माता! तो–सी तू ही जग में।

6. करम–वचन–मानस विमल तुम समान तुम तात।

7. उपमा न कोउ, कह दास तुलसी, कतहुँ कवि–कोविंद लहैं।

बल, विनय, विद्या, शील, शोभा सिंधु इन सम येइ अहैं।।

भ्रान्तिमान अलंकार

परिभाषा – जब किसी पद में किसी सादृश्य विशेष के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम उत्पन्न हो जाता है तो वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब किसी पदार्थ को देखकर हम उसे उसके समान गुणों या विशेषताओं वाले किसी अन्य पदार्थ के रूप में मान लेते हैं तो वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार माना जाता है। जब उपमेय को भूल से उपमान समझ लिया जाये। **जैसे** – अँधेरे में किसी 'रस्सी' को देखकर उसे 'साँप' समझ लेना भ्रान्तिमान अलंकार है।

उदाहरण –

1.''ओस बिन्दु चुग रही हंसिनी मोती उनको जान।''

प्रस्तुत पद में हंसिनी को ओस बिन्दुओं (उपमेय) में मोती (उपमान) का भ्रम उत्पन्न हो रहा है अर्थात् वह ओस की बूँदों को मोती समझकर चुग रही हैं, अतएव यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

2.''भ्रमर परत शुक तुण्ड पर, जानत फूल पलास।

शुक ताको पकरन चहत, जम्बु फल की आस।।''

3.''नाक का मोती अधर की कान्ति से, बीज दाडिम का समझकर भ्रान्ति से।

देखकर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता है अन्य शुक यह कौन है।।''

यहाँ नाक के आभूषण के मोती में अनार (दाडिम) के बीज का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

4.''कपि करि हृदय विचारि, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।

जानि अशोक अंगार, सीय हरषि उठि कर गहेउ।।''

यहाँ सीता को मुद्रिका में अशोक पुष्प (अंगार) का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

5. विधु वदनिहि लखि बाग में, चहकन लगे चकोर।

वारिज वास विलास लहि, अलिकुल विपुल विभोर।।''

प्रस्तुत पद में किसी चन्द्रमुखी नायिका को देखकर चकोरी की उसके मुख में चन्द्रमा का भ्रम हो रहा है तथा उसके वदन में कमल की सुगंध पाकर (समझकर) भ्रमर आनंद विभोर हो गया है। अतः यहाँ उपमेयों (मुख व सुवास) में उपमानों (चन्द्रमा व कमल–गंध) का भ्रम उत्पन्न होने के कारण भ्रान्तिमान अलंकार है।

6.''बेसर मोती दुति झलक, परी अधर पर आनि।

पट पोंछति चूनो समुझि, नारी निपट अयानि।।''

यहाँ नायिका अधरों पर पडी मोतियों की उज्ज्वल झलक को पान का चूना समझ लेती है और उसे पट से पोंछने का प्रयत्न करती है।

7. ''बिल विचार प्रविशन लग्यो, नाग शुँड में व्याल।

काली ईख समझकर, उठा लियो तत्काल।।''

प्रस्तुत पद में सर्प (व्याल) को हाथी (नाग) की सूँड में बिल का तथा हाथी को काले सर्प में काली ईख (गन्ने) का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

8. ''किंशुका कलिका जानकर, अलि गिरता शुक चोंच पर।

शुक मुख में धरता उसे, जामुन का फल समझकर।।''

इस पद में भ्रमर को तोते की लाल चोंच में पलास के पुष्प का तथा तोते को भ्रमर में जामुन के फल का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

9. ''पाँय महावर देन को, नाइन बैठी आय।

पुनि–पुनि जानत महावरि, एडी नीडत जाय।।''

यहाँ नाइन (ब्यूटी पार्लर की मेंहदी लगाने वाली) को नायिका के लालिमा युक्त पैरों में महावर लगे होने का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

10. ''पेशी समझ माणिक्य को वह विहग देखो ले चला।''

''जानि स्याम को स्याम घन नाच उठे वन मोर।''

यहाँ साँवले रंग के कृष्ण को काला बादल समझकर वन के मोर नाच रहे हैं, अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

11. ''फिरत घरन नूतन पथिक, बारी निष्ट अयानि।।''

फूल्यो देखि पलास वन, समुहे समुझि दवागि।।''

12. ''कुहू निशा में परछाई को प्रेत समझकर हुआ अचेत।''

13. 'जानि स्याम को स्याम–घन नाचि उठे वन मोर।'

यहाँ मोरों ने कृष्ण को वर्ण–सादृश्य के कारण श्याम मेघ समझ लिया। अर्थात् कृष्ण (उपमेय) में श्यामल वर्ण होने के कारण मयूरों को श्यामल (काले) रंग के मेघों का भ्रम हो गया।

14. मनि–मुख मेलि ठारि कपि देहीं।

राम ने बानरों को बिदा करते हुए अनेक उपहार दिये। रंग–बिरंगी मणियों को देखकर बानरों ने उन्हें फल समझा और मुँह में डाल लिया। जब कडवी लगीं तो थूक दिया।

15. 'चन्द अकास को वास विहाइ कै

आजु यहाँ कहाँ आइ उयो है?

किसी ने मुख को देखकर उसे चन्द्रमा समझ लिया।

16. ''वृन्दावन विहरत फिरैं राधा नन्द किशोर।

नीरद यामिनी जानि सँग डोलैं बोलैं मोर।।

17. ''नाच अचानक ही उठे, बिनु पावस वन मोर।

जानत ही नंदित करी, यह दिसि नंद किशोर।।

18. ''अधरों पर अलि मंडराते, केशों पर मुग्ध पपीहा।

19. 'री सखि मोहि बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।

डस्यो चहत मुख आय, भरम भरी बारिज गुनै।।'

20. 'किंशुक कुसुम जानकर झपटा भौंरा शुक की लाल चोंच पर।

तोते ने निज ठोर चलाई जामुन का फल उसे सोचकर।।'

मानवीकरण अलंकार

परिभाषा – जब किसी पद में किसी प्राकृतिक पदार्थ को (जड़ या अमूर्त पदार्थ को) मानव के रूप में मान लिया जाता है अथवा प्राकृतिक पदार्थों में मानवीय क्रियाओं का आरोपण कर दिया जाता है अर्थात् जहाँ प्राकृतिक जड़ या अमूर्त पदार्थ भी मानवों के जैसी क्रियाएँ करते दिखलाई पड़ते हैं, वहाँ मानवीकरण अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1.बीती विभावरी जाग री।

अम्बर पनघट में डूबो रही तारा घट उषा नागरी।

खगकुल कुलकुल सा बोल रहा,

किसलय का अंचल डोल रहा।

लो यह लतिका भी भर लाई,

मधु मुकुल नवल रस गागरी।।

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित प्रस्तुत गीत में 'उषा' को एक नागरी (नगर में रहने वाली नारी) के रूप में चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त पक्षी समूह (खगकुल) का कुलकुल की ध्वनि करते हुए बोला, किसलय रूपी अंचल का डोलना, लतिका (लता) के द्वारा मधु मुकुल के रूप में नवल रस की गागरी (कलश) भरना जैसे प्रयोगों के द्वारा प्राकृतिक पदार्थों में मानवीय क्रियाओं का आरोपण किया गया है। अतः यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

2.''धीरे–धीरे हिम आच्छादन, हटने लगा धरातल से।

जगी वनस्पतियाँ अलसायी, मुख धोती सीतल जल से।।''

प्रस्तुत पद में प्राकृतिक पदार्थ वनस्पतियों में मानवीय क्रियाओं (आलस्य से जागना, ठण्डे पानी से मुख धोना आदि) का आरोपण किया गया है, अतः यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

3. ''सन्ध्या घनमाला की ओढ़े रंग बिरंगी छींट।।''

बादलों से घिरी (आच्छादित) सन्ध्या को रंग–बिरंगे कपड़े (छींट) पहना दिये जाने के कारण यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

4.''ऊधौ! मन न भये दस–बीस।

एक हुतो सो गयो स्याम संग को अवराधै ईस।।''

यहाँ मन को मानव की तरह गतिशील बताया गया है, अतः मानवीकरण अलंकार है।

5.''दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही,

सन्ध्या सुन्दरी परी सी,

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

धीरे–धीरे''

''कहो तुम रूपसी कौन? व्योम से उतर रही चुपचाप।

छिपी निज छाया छबि में आप, सुनहला फैला केशकलाप।

मधुर, मंथर, मृदु, मौन।''

''हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार, शस्य अपार

हिल–हिल, खिल–खिल, हाथ–हिलाते, तुझे बुलाते

विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।''

6. आशा! तेरी अमित महिमा, धन्य तू देवि आशा।

तू छू के है मृतक बनते प्राणियों को जिलाती।।

7. चुपचाप खङी थी वृक्ष पांत।

सुनती जैसी कुछ निजी बात।।

8. नेत्र निमीलन करती मानो,

प्रकृति प्रबुद्ध लगने लगी।

9. सुनत कठिनता अति अकुलानी

10. सुनि अध नरकहूँ नाक सँकोरी।

11. जिसके आगे पुलकित हो जीवन सिसकी भरता।

उत्प्रेक्षा अलंकार

परिभाषा – जब किसी पद में उपमेय को उपमान के समान तो नहीं माना जाता है, परन्तु यदि उपमेय में उपमान की सम्भावना प्रकट कर दी जाती है, तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

अर्थात् जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाये, अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाए।

उपर्युक्त संस्कृत लक्षण का हिन्दी अर्थ निम्नानुसार ग्रहण किया जाता है–

प्रकृतस्य – उपमेय की, **समेन –** उपमान के साथ, **यत् –** जो, **सम्भावनम् –** सम्भावना व्यक्त की जाती है, उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं।

उत्प्रेक्षा शब्द 'उद् + प्र + ईक्षा' के योग से बना है। अर्थात् प्रकृष्ट रूप में देखना ही उत्प्रेक्षा है।

जैसे –

''दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढ़त जनु बटु समुदाई।।''

अर्थात् वर्षा ऋतु में चारों ओर से मेंढ़कों की आवाज सुनाई दे रही है। वह आवाज ऐसी लगती है जैसे कि किसी आश्रम में शिष्य समुदाय वेद पाठ कर रहा हो।

वहाँ उपमेय (दादुर धुनि) में उपमान (वेद–पाठ) की संभावना को व्यक्त किया गया है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

'नेत्र मानो कमल हैं।'

नेत्र वास्तव में कमल नहीं हैं परन्तु मान लिया है (सम्भावना कर ली गयी है) कि वे कमल हैं।

''अम्बर में तारे मानो मोती अनगन हैं।

यहाँ पर तारों में मोतियों की सम्भावना की गयी है, अर्थात् तारों को मोती माना गया है।

''नाना–रंगी जलद नभ में दीखते हैं अनूठे।

योधा मानो विविध रंग के वस्त्र धारे हुए हैं।।

यहाँ अनेक रंग के मेघों में अनेक रंग के वस्त्र पहने हुए योद्धाओं की कल्पना की गयी है।

कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये।।

यहाँ आँसुओं से भरे हुए उत्तरा के नेत्र में ओस–कण–युक्त पंकजों की सम्भावना की गयी है।

अति कटु बचन कहति कैकेई।

मानहु लोन जरे पर देई।।

यहाँ कटु वचन के कथन में जले पर नमक लगाने की सम्भावना की गयी है, कटु वचन कहने को जले पर नमक लगाना माना गया है।

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द –

- ✓ **हिन्दी के पदों में 'मानो, मनु, मनहु, जानो, जनु, जनहु' इत्यादि शब्द उत्प्रेक्षा वाचक शब्द माने जाते हैं।**

''मन्ये शंके ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।

उत्प्रेक्षा व्यञ्जते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः।।''

अर्थात् 'मन्य, शंके, ध्रुवं, नूनम्, इव' इत्यादि उत्प्रेक्षा वाचक शब्द हैं, परन्तु हिन्दी के पदों में 'मानो, मनु, मनहु, जानो, जनु, जनहु' इत्यादि शब्द उत्प्रेक्षा वाचक शब्द माने जाते हैं।

विशेष – उत्प्रेक्षा सादृश्यगर्भ अलंकारों में अध्यवसायमूलक अभेद प्रधान अलंकार है। 'अध्यवसाय' का अर्थ है –

'निश्चय'। यह दो प्रकार का होता है – 1. साध्य 2. सिद्ध

1. साध्य – जहाँ असत्यता की प्रतीति होती है।

2. सिद्ध – जहाँ सत्यता की प्रतीति होती है।

यह अध्यवसाय जब साध्य रहता है, तब वह उत्प्रेक्षा का विषय बनता है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के भेद – उपमेय में उपमान की सम्भावना वस्तु रूप में, हेतु रूप में और फल रूप में की जा सकती है। इस आधार पर उत्प्रेक्षा के मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं :–

1. वस्तूत्प्रेक्षा 2. हेतूत्प्रेक्षा 3. फलोत्प्रेक्षा

(अ) वस्तूत्प्रेक्षा (वस्तु+उत्प्रेक्षा) – जब किसी पद में एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना प्रकट की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है। इसे 'स्वरूपोत्प्रेक्षा' भी कहा जाता है।

उदाहरण –

1.''कहती हुई यों उत्तरा के, नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो, हो गये पंकज नये।।''

प्रस्तुत पद में आँसुओं से भरी उत्तरा की आँखों में (एक वस्तु, उपमेय) कमल पर जमा हिमकणों (अन्य वस्तु, उपमान) की संभावना को प्रकट किया जा रहा है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

2.''सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।

मनों नीलमणि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात।।''

उपमेय – पीताम्बरधारी सांवले शरीर वाले श्रीकृष्ण

उपमान – नीलमणि पर्वत पर प्रातःकाल पड़ती धूप

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मनों

यहाँ पीताम्बर पहने हुए भगवान श्याम (कृष्ण) की शोभा में (उपमेय) नीलमणि पर्वत पर प्रातःकाल पड़ती सूर्य की आभा (उपमान) की संभावना प्रकट की गई है। इस प्रकार एक वस्तु में अन्य वस्तु की संभावना होने के कारण यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

3.''झीने पट में झुलमुली, झलकति ओप अपार।

सुरतरु की मनु सिंधु में, लसति सपल्लव डार।।''

उपमेय – झीने (पतले या पारदर्शी) वस्त्रों से झलकती नायिका के शरीर की शोभा।

उपमान – स्वच्छ सिंधु में पत्तों सहित झलकती देववृक्ष की डाली

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मनु

4.''नील परिधान बीच सुकुमार, खुला रहा मृदुल अधखुला अंग।

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।।''

उपमेय – नीले वस्त्रों में से दिखाई दे रहे कामायनी के कोमल अंग

उपमान – बादलों के बीच से चमकती गुलाबी रंग की बिजली

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – ज्यों

5.''अति कटु वचन कहति कैकई। मानहु लोन जरै पर देई।''

उपमेय – कैकेयी के कटु वचन

उपमान – जले पर नमक छिड़कना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मानहु

6.''स्वर्ण शालियों की कलमें थीं, दूर दूर तक फैल रहीं।

शरद इन्दिरा के मन्दिर की, मानो कोई गैल रही।।''

उपमेय – दूर–दूर तक फैली स्वर्ण–शालियों की कलमें।

उपमान – शरद ऋतु की शोभा

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मानो

7.''लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंद्र।

ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद।।''

उपमेय – राम व सीता के मध्य बैठी मुनि–मंडली

उपमान – सच्चिदानंद द्वारा शरीर रूप धारण करना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – जनु

8. ''उन्नत हिमालय से धवल, वह सुरसरि यों टूटती।

मानों पयोधर से धरा के, दुग्ध धारा छूटती।।''

उपमेय – हिमालय से निकली गंगा

उपमान – पृथ्वी के स्तनों (पर्वतों) से छूटती दुग्धधारा

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मानों

9. ''प्राण प्रिया मुख जगमगाती, नीले अंचल चीर।

मनहुँ कलानिधि झलमलै, कालिन्दी के नीर।।''

उपमेय – नीले (सुंदर) वस्त्रों में से जगमगाता नायिका का मुख

उपमान – कालिंदी (यमुना) के जल में झलकती चंद्रमा (कलानिधि) की आभा

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मनहुँ

10. ''रत्नाभरण भरे अंगों में, ऐसे सुन्दर लगते थे।

ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ जुगनू जगमग जगते थे।।''

उपमेय – शरीर के अंगों पर पहने आभूषण

उपमान – प्रफुल्लित लता पर जगमगाते जुगनू

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – ज्यों

11. ''नीको सतु ललाट पर, टीको जरित जराइ।

छबिहिं बढावत रवि मनौ, ससि मंडल में आइ।।''

उपमेय – नायिका के ललाट पर जगमग करता टीका

उपमान – सूर्य द्वारा अपनी सोभा बढ़ाने के लिए शशिमंडल में प्रवेश

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मनौ

यहाँ नायिका के ललाट पर रत्नजडित टीका उपमेय है, जिसमें शशिमण्डल में सूर्य के प्रवेश को उपमान रूप में संभावित किया गया है। इस प्रकार एक वस्तु में अन्य वस्तु की संभावना होने के कारण यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

12. ''जान पडता नेत्र देख बडे–बडे। हीरकों में गोल नीलम हैं जडे।।''

उपमेय – नायिका की बडी–बडी आँखें

उपमान – हीरे में जडा गोलाकार नीलक

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – जान पडता

13. ''चमचमाता चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीना।

मानहु सुरसरिता विमल, जल उछलत युग मीना।।''

उपमेय – झीने वस्त्र के घूँघट में से चंचल नयनों का चमचमाना

उपमान – गंगा के स्वच्छ जल में दो मछलियों का उछलना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मानहु

14. ''नाहिन ये पावक प्रबल, लुएँ चलत चहँपास।

मानहु विरह वसन्त के, ग्रीष्म लेत उसास।।''

उपमेय – ग्रीष्म ऋतु में तेज लुएँ चलना

उपमान – वसंत के वियोग में ग्रीष्म द्वारा उच्छ्वास छोडना

उत्प्रेक्षा वाचक शब्द – मानहु

15. ''पुलक प्रकट करती है धरती मंद पवन के झोंकों से।

मानो झूम रहे हों तरु भी, मंद पवन के झोंकों से।।''

16. ''निशान्त के साथ निशेश भी चला।

मानों मही के सिर से टली बला।।''

17. ''भौंहे स्याम धनुक जनु ताना। जासहुँ हेर मार विष बाना।।''

18. ''विप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत।''

19. ''सेनापति उनए नए जलद सावन के, चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय के।

सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति, आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै।।''

20. ''लट लोल कपोल कलोल करैं कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।

अंग अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।।''

(ब) हेतूत्प्रेक्षा (हेतु+उत्प्रेक्षा) – जब किसी पद में अहेतु की हेतु रूप में सम्भावना या कल्पना प्रकट की जाती है अर्थात् जो वास्तविक कारण नहीं है, पर उसी में कारण खोजने की कल्पना की जाती है, तो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1.''मोर मुकुट की चन्द्रिकनु, यों राजत नँदनंद।

मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सतचंद।।''

बिहारी द्वारा रचित प्रस्तुत पद में नायिका की सखी नायिका से मोर–मुकुटधारी श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करके उसके चित्त में उस अद्भुत शोभा को देखने की लालसा उत्पन्न करना और उससे अभिसार कराना चाहते हुई कहती है–''मानो श्रीकृष्ण ने भगवान् शंकर (ससिसेखर) से ईर्ष्या करने के लिए (ईर्ष्यावश) अपने मस्तक पर सैंकडों चन्द्रमा धारण कर लिये हैं।''

यहाँ भी अहेतु में हेतु की संभावना मात्र है, अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

2.''मनो कठिन आँगन चली, ताते राते पाय।।''

यहाँ नायिका के पैर प्रकृति–प्रदत्त लाल (राते) हैं, पर कवि उनमें कठोर आँगन पर पैदल चलने के कारण को सम्भावित कर रहा है, अतः कारण खोजने का प्रयास मात्र होने के कारण यहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है।

3.''घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास।

नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधुके पास।।''

अर्थात् कामायनी के घुंघराले बाल उसके मुख तथा कंधे तक फैले हुए थे, जिनको देखकर ऐसा लगता था मानो नीलमेघ के बालक अमृतपान करने के लिए चन्द्रमा के पास आ गये हों। यहाँ भी जो कारण बतलाया गया है, उसमें कोई वास्तविकता नहीं होकर कल्पना मात्र है। अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

4. ''भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे विराजी।

इन्दुकला कुज में बसी, मनों राहुभय भाजि।।''

प्रस्तुत पद में कवि शिरोमणि बिहारी जी कह रहे हैं कि ''नायक (ललन) ने अपने माथे (भाल) पर लाल टीका लगा रखा है, तथा उस लाल टीके पर चावल (आखत) भी लगे हुए हैं, जिसे देखकर ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा की कलाएँ (इन्दुकला) राहु के भय से मंगल ग्रह (कुज) में जाकर बस गई हों।''

यहाँ उपमेय (चावल लगा लाल टीका) एवं उपमान (इन्दुकला का कुज में बसना) में बिना किसी कारण (अहेतु) के ही कारण (हेतु) खोजने का प्रयास किया गया है, अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

5. ''अरुण भये कोमल चरण भुवि चलिबे ते मानु।

अर्थात् शायद भूमि पर पैदल चलने के कारण नायक के पैर लाल हो गये हैं।

6. ''सोवत सीता नाथ के, भृगु मुनि दीनी लात।

भृगुकुल पति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात।।''

अर्थात् पहले भृगु ऋषि ने सोये हुए विष्णु की छाती पर लात मारी थी, इस बात को याद करके श्रीराम ने भृगुकुल के पति परशुराम जी की गति का हरण कर लिया।

यहाँ पर भी परशुरामजी की गति को हरण करने का जो कारण बतलाया गया है, वह वास्तविक कारण नहीं है, अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

7. ''मुख सम नहिं याते कमल मनु जल रह्यो छिपाय।''

''मुख सम नहिं याते रहत मनु चन्दहि छाया छाय।''

अर्थात् ''मैं नायिका के मुख के समान नहीं हूँ, यह सोचकर कमल जल में जाकर छिप गया तथा चन्द्रमा पर सदैव कालिमा छायी रहती है।'' यहाँ पर कमल के जल में छिपने एवं चन्द्रमा पर कालिमा छाने का जो कारण बतलाया गया है, वह कोई वास्तविक कारण नहीं है। अतः अहेतु में हेतु की सम्भावना होने के कारण यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

8. ''हँसत दसन अस चमके, पाहन उठे छरक्कि।

दारिउँ सरि जो न करि सका, फाटेउ हिया दरक्कि।।''

9. ''विरह हे आगि सुर जरि काँपा।

मानहुँ राति दिवस जरै ओहि तापा।।''

10. ''भुज भुजंग सरोज नयननि, बदन विधु जित्यौ लरनि।

रहे बिबरनि सलिल नभ, उपमा अपर दुनि उरनि।।''

11. ''बार–बार उस भीषण रव से, कंपती धरणी देख विशेष।

मानों नील व्योम उतरा हो, आलिंगन के हेतु अन्य शेष।।''

12. ''वह मुख देख–देख पांडू सा पङकर, गया चन्द्र पश्चिम की ओर।''

13. ''इन्हहिं देखि बिधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा।।

कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आये। तेहि इरषा बन आनि दुराये।।'' (प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा)

(स) फलोत्प्रेक्षा (फल+उत्प्रेक्षा) – जब किसी पद में अफल में फल की कल्पना की जाती है अर्थात् जो फल नहीं है, उसे फल के रूप में कल्पित किया जाता है तो वहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार माना जाता है।

उदाहरण –

1.''बाजि बली रघुबंसिन के मनों सूरज के रथ चूमन चाहै''

उपमेय – रघुवंश के बलवान घोङे

उपमान – सूरज के रथ को चूमने की इच्छा

वाचक शब्द – मनों

2.''बढ़त ताङ को पेङ यह, मनु चूमन को आकास।''

अर्थात् शायद आकाश को चूम लेने की आशा की इच्छा से यह ताङ का पेङ इतना ऊँचा बढ़ गया है। यहाँ आकाश को छूने (चूमने) के फल की इच्छा से ताङ का ऊँचा बढ़ना विसंगत सा लगता है, किन्तु कवि ने उसे फल रूप में चित्रित किया है। अतः अफल में फल की संभावना करने के कारण यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

3.''विकसि प्रात में जलज ये, सरजल में छबि देत।

पूजत भानुहि मनहु ये, सिय मुख समता हेत।।''

प्रस्तुत पद में कमलों के सरोवर में खिलने की शोभा इस दोहे का वर्ण्य विषय है, जिसमें अफल में फल की संभावना का रूप देते हुए कवि कहता है कि 'वे कमल मानो सीताजी के मुख की समता प्राप्त करने के लिए भानु (सूर्य) की पूजा करते हैं।''

वस्तुतः कमलों का सरोवर में खिलना स्वाभाविक है, किन्तु उसमें सूर्यपूजा के कार्य का विधान करके अफल में फल की संभावना की गई है, अतः यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

4.''तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।

झूके कूल सों जल परसन, हिल मनहुँ सुहाये।।''

यहाँ वृक्ष स्वाभाविक रूप से यमुना के जल की ओर झुक रहे हैं, पर कवि यहाँ यह कहना चाहता है कि वे जलस्पर्श के फल के लिए झुके हुए हैं। इस प्रकार अफल में फल की संभावना होने के कारण यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

5.''खंजरीट नहिं लखि परत, कछु दिन साँची बात।

बाल दृगन सम होन को, करत मनो तप जात।।''

प्रस्तुत पद में 'कुछ समय के लिए खंजन पक्षियों का न दिखाई देना' जैसे वर्ण्य विषय को लेकर कवि ने उसकी अदृश्यता का कारण यह सम्भावित किया है कि वे मानो उस सुंदर बाला (नायिका) के नेत्रों की शोभा प्राप्त करने के लिए हिमालय पर तपस्या करने के लिए चले गये हैं। कवि की यह कल्पना इस पद में फलोत्प्रेक्षा को प्रकट कर रही है।

6. ''तब मुख समता लहन को जल सेवत जलजात।।''

मानो तुम्हारे मुख की समता प्राप्त करने को कमल जल में खङा होकर तपस्या कर रहा है।

कमल जल में एक पैर अर्थात् कमल–नाल पर खङा रहता है, पर इस उद्देश्य से नहीं कि मुख की समता प्राप्त करे। मुख की समता प्राप्त करना उसका उद्देश्य नहीं है, वह इस फल को ध्यान में रखकर इस प्रकार खङा होने का कार्य नहीं करता ऐसी आकांक्षा न होने पर भी इसकी सम्भावना की गयी है। अतः फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

7. ''तो पद समता को कमल, जल सेवत इक पाँय।''

8. ''रोज अन्हात है छीरधि में ससि,

तो मुख की समता लहिबे को।''

चन्द्रमा सदा क्षीर–सागर में मग्न होता है और उसका उद्देश्य यह नहीं होता कि मुख की समता प्राप्त करे। इस फल की कामना वह नहीं करता। पर माना गया है कि वह इसी फल की कामना करके ऐसा करता है। इस प्रकार यहाँ अफल को फल माना है जिससे फलोत्प्रेक्षा हुई।

9. ''नाना सरोवर खिले नव पंकजों को, ले अंक में विहँसते मन मोहते थे।

मानों प्रसार अपने सहसा करों को, वे माँगते शरद से सुविभूतियाँ थे।।''

10. ''मानहुँ विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबै काज।

दृग पग पौंछन को किये भूषण पायंदाज।।''

11. ''मानो स्वर्ग सिमटकर आये, भूधर को विभोर सा करने।

फूटे हों विराट वीणा के तारों से कम्पित करने।।''

12. ''नित्य ही नहाता है चन्द्रमा क्षीर सागर में।

सुन्दरि! मानो तुम्हारे मुख की समता के लिए।।''

13. ''मधुप निकारन के लिए मानो रुके निहारि।

दिनकर निज कर देत है सतदल–दलनि उघारि।।''

हिंदी साहित्य

विरोधाभास अलंकार

'विरोधाभास' शब्द 'विरोध+आभास' के योग से बना है, अर्थात् जब किसी पद में वास्तविकता में तो विरोध वाली कोई बात नहीं होती है, परन्तु सामान्य बुद्धि से विचार करने पर वहाँ कोई भी पाठक विरोध कर सकता है तो वहाँ विरोधाभास अलंकार माना जाता है। जैसे–

''या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोय।

ज्यौं ज्यौं बूडै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उजलो होय।।'

प्रस्तुत पद में कवि यह कहना चाहता है कि हमारे अनुरागी मन की गति को कोई भी समझ नहीं सकता है, क्योंकि यह जैसे–जैसे कृष्ण भक्ति के रंग में डूबता जाता है, वैसे–वैसे ही उसके विकार दूर होते चले जाते है।

यहाँ कोई भी सामान्य बुद्धि का पाठक यह विरोध कर सकता है कि जो काले रंग में डूबता है, वह उज्जवल कैसे हो सकता है। इस प्रकार विरोध का आभास होने के कारण यहाँ विरोधाभास अलंकार माना जाता है।

''अवध को अपनाकार त्याग से, वन तपोवन सा प्रभु ने किया।

भरत ने उनके अनुराग से, भवन में वन का व्रत ले लिया।।''

प्रस्तुत पद में राम के द्वारा वन को तपोवन सा बनाना एवं भरत के द्वारा राजभवन में ही वन का व्रत ले लेना विरोध का सा आभास कराता है।

''तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।

अनबूडे बूडे तिरे, जे बूडे सब अंग।।''

तन्त्री के नाद में जो व्यक्ति नहीं डूबा व डूब गया और जो इसमें डूब गया वह तिर गया, यह विरोधाभास का कथन प्रतीत होता है।

''विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देत।

केसव जीवन हार को, असेस दुख हर लेत।।''

''शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का।

यह व्यर्थ साँस चल चलकर, करती है काम अनिल का।।''

''राजघाट पर पुल बँधत, गयी पिया के साथ।

आज गये कल देखिके, आज ही लौटे नाथ।।''

''धनि सूखै भरे भादों माहा।

अबहुँ न आये सींचने नाहा।।''

''अचल हो उठते हैं चंचल, चपल बन जाते अविचल।

पिघल पडते हैं पाहन दल, कुलिश भी हो जाता कोमल।।''

''सुलगी अनुराग की आग वहाँ जल से भरपूर तडाग जहाँ।''

''कत बेकाज चलाइयत, चतुराई की चाल। कहे देत यह रावरे, सब गुन बिन गुन माल।।''

''आगे आगे दी जलै, पीछे हरिया होय।

बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्या फल होय।।''

''सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।

रामचंद्र सिय कमल मुख, भलो बन्यौ है साथ।।''

''उजरनि बसी है हमारी अँखियान देखौ।''

हिंदी साहित्य रेखा

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

असंगति अलंकार

जब किसी पद में किसी कार्य का अपने मूल स्थान से हटकर किसी अन्य स्थान पर घटित होना पाया जात है अर्थात् जो काम जहाँ होना चाहिए, वहाँ नहीं होकर किसी अन्य स्थान पर होता है तो वहाँ असंगति अलंकार माना जाताा है।

उदाहरण –

1. **"गजन फल देखिय तत्काला।**
   काक होहिं पिक वकहु मराला।।"
2. **"हृदय घाव मोरे, पीर रघुवीरे।"**

अर्थ – सामान्यतः जिस व्यक्ति के शरीर पर घाव होता है, पीड़ा भी उसी को होती है, परन्तु यहाँ घाव तो लक्ष्मण के हृदय में हो रहा है तथा उसकी पीड़ा राम के हृदय में हो रही है, अतः उपयुक्त स्थान पर कार्य नहीं होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार माना जाता है।

3. **"मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थीं उनकी अलकें।**
   पी ली मधु मदिरा किसने, थीं बंद हमारी पलकें।।"
4. **"पलनि पीक अंजन अधर, धरे महावर भाल।**
   आजु मिलै हो भली करी, भले बनै हो लाल।।"

अर्थ – सामान्यतः पान का बीड़ा मुख में रखा जाता है, अंजन (काजल) आँखों में लगाया जाता है तथा महावर पैरों पर लगाया जाता है, परन्तु यहाँ कवि बिहारी ने पान (पीक) को आँखों की पलकों में, अंजन को होठों पर तथा महावर को मस्तक (भाल) पर चित्रित किया है। इस प्रकार वास्तविक स्थान पर पदार्थ नहीं होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार है।

5. **"राज देन कहँ सुभ दिन साधा।**
   कह्यो जान वन केहि अपराधा।।"

अर्थ – प्रस्तुत पद में राज्य देने के शुभ दिवस के स्थान पर उसके विपरित वन जान के आदेश का वर्णन होने के कारण यहाँ संगति अलंकार है।

6. **"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित्त प्रीति।**
   परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।"

अर्थ – सामान्यतः जो वस्तु उलझती है वही टूटती है; जो टूटती है वही जुड़ती है तथा जो मुड़ती है, गाँठ भी उसी में पड़ती हैं, परन्तु बिहारी के इस दोहे में आँखें तो नायक–नायिका की उलझ रही हैं परन्तु टूट उनके परिवार रहे हैं। परिवार तो टूट रहे हैं परन्तु उनके हृदय में प्रेम भावना जुड़ती चली जा रही है। प्रेम तो नायक–नायिका के हृदय में जुड़ रहा है, परन्तु उसको देखकर दुर्जनों के हृदय में गाँठ पड़ रही है। विधाता की यह कैसी विचित्र लीला (रीति) है। इस प्रकार वास्तविक स्थान से अन्यत्र कार्य घटित होने के कारण यहाँ असंगति अलंकार है।

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

काव्य के लक्षण

संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

भामह (छठी शताब्दी)

भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'' अर्थात् शब्द और अर्थ के 'सहित भाव' को काव्य कहते हैं।

आचार्य भामह शब्द और अर्थ के सामंजस्य पर बल देते हैं, अर्थात् कविता न तो शब्द चमत्कार है और न केवल अर्थ का सौष्ठव है।

आचार्य दण्डी (7 वीं शताब्दी)

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में काव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है। ''शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिना पदावली'' अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली तो उसका अर्थात् काव्य का शरीर मात्र है। स्पष्ट है दण्डी केवल शब्दार्थ को काव्य नहीं मानते क्योंकि उनके अनुसार शब्दार्थ तो काव्य का शरीर मात्र है, उसकी आत्मा नहीं। दण्डी अलंकारवादी आचार्य थे और अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे। दण्डी के अनुसार, वह शब्दार्थ जो अलंकार युक्त हो, काव्य है। अलंकार विहीन शब्दार्थ दण्डी के विचार से काव्य नहीं कहा जा सकता।

आचार्य वामन (8 वीं शताब्दी)

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में काव्य की निम्न परिभाषा दी है। 'गुणालंकृतयों शब्दार्थर्यो काव्य शब्दो विद्यते।' अर्थात् गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य के नाम से जाना जाता है।

आचार्य मम्मट (12 वीं शताब्दी)

संस्कृत काव्य धारा के प्रमुख विद्वान् आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य की निम्न परिभाषा दी है, ''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।'' अर्थात् काव्य वह शब्द और अर्थ जो दोष से रहित हो, गुण से रहित हो तथा कभी–कभी अलंकार से रहित भी हो सकता है।

आचार्य विश्वनाथ (14 वीं शताब्दी)

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण का तर्कपूर्ण खण्डन किया है। उन्होंने काव्य की निम्न परिभाषा प्रस्तुत की है। 'वाक्यरसात्मकंकाव्यम्' अर्थात् रस से पूर्ण वाक्य ही काव्य है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आचार्य विश्वनाथ ने रस को ही काव्य का प्रमुख तत्त्व माना है जबकि पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुण सम्पन्ना और सालंकारिता पर अधिक बल दिया था।

पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शताब्दी)

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ रस गंगाधर में काव्य लक्षण को निम्न शब्दों में व्यक्त किया: ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। इस परिभाषा में रमणीय शब्द अस्पष्ट है। बाबू गुलाबराय ने रमणीय का अर्थ मन को रमाने वाला, लीन करने वाला बताया है। रस में लीन मन आनन्द से व्याप्त हो जाता है।

नाट्यशास्त्र – मृदुललितपदाढयं गूढशब्दार्थहीनं जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यं।

हिन्दी साहित्य संसार

बहुकृतरसमार्ग संधिसंधानयुक्तं सभवतिशभकाव्यंनाटक प्रेक्षकाणाम्।।

अग्निपुराण – संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवददोष वर्जितम्।।

कुन्तक – शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनी।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।।

जयदेव – निर्दोषगुणालंकार लक्षणरीतिवृत्तं वाक्यं काव्यम्।।

हेमचन्द – अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।।

भोजराज – अदोषौ गुणवत्काव्यं अलंकारैरलंकृतम्।

रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

आनन्दवर्धन – काव्यास्यात्मा ध्वनिः।।

आनन्दवर्धन – सहृदय हृदयहलादि शब्दार्थमयत्वमेय काव्यलक्षणम्

आचार्य वामन – रीतिरात्मा काव्यस्य

रुद्रट – 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'

हिन्दी आचार्यों के काव्य लक्षण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काव्य लक्षण शुक्ल जी ने अपने निबन्ध संग्रह चिन्तामणि भाग–1 के निबन्ध 'कविता क्या है'' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्त साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ''किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख बात या वक्तृता का नाम कविता है।'' इस अर्थ में कविता अत्यन्त व्यापक हो जाती है। वह गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में हो सकती है तथा दो गुण होने चाहिए प्रभाव डालने की क्षमता और आनन्द प्रदान करने की शक्ति।

बाबू गुलाबराय ''काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने वाली अभिव्यक्ति है।''

आचार्य केशवदास ''जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।

भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त।।''

चिंतामणि ''सगुनालंकार सहित दोष रहित जो होई।

शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई।।''

कुलपति मिश्र ''जगते अद्भुत लोकोत्तर चमत्कार यह लक्षण मैं करयौ।''

ठाकुर कवि ''पंडित और प्रवीनन को जोह चित्त हरै सो कवित्त कहावै''

कुलपतिमिश्र (रस रहस्य) ''जगत अद्भुत सुखसदन, सब्दरु अर्थत कवित्त।

वह लच्छण मैने कियो, समूझि ग्रंथ बहुचित्त।''

देव (काव्य रसायन) ''शब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमत सुजस सरीर।

चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गंभीर।।''

सुनि परैसो शब्द है, समुझि परै सो अर्थ–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ''अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ''अव्यक्त की अभिव्यक्ति जगत है अतः कविता अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति हुई।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ''जगत का नाना वस्तुओं–व्यापारों का एक रूप में रखना कि वे हमारे भाव चक्र के भीतर आ जायें। यही काव्य का लक्ष्य होता है।''

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ''काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्यमात्र में स्वभावतः भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है।''

हजारी प्रसाद द्विवेदी ''साहित्य मनुष्य के अन्तर का उच्छलित आनन्द है, जो उसके अन्तर में अटाए नहीं अट सका था। साहित्य का मूल यही आनन्द का अतिरेक है। उच्छलित आनन्द के अतिरेक से उद्धृत सृष्टि ही सच्चा साहित्य है।''

नगेन्द्र ''आत्माभिव्यक्ति ही वह मूल तत्त्व है, जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसका कृति साहित्य बन पाती है।''

रामविलास शर्मा ''साहित्य जनता की वाणी है। उसके जातीय चरित्र का दर्पण है। प्रगति पथ में बढ़ने के लिए उसका मनोबल है। उनकी सौन्दर्य की चाह पूरी करने वाला साधन है।''

अज्ञेय ''कविता सबसे पहले शब्द है और अन्त में भी यही बात रह जाती है कि कविता शब्द है।''

पंत ''साहित्य अपने व्यापक अर्थ में, मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है।''

पंत ''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''

धूमिल ''कविता शब्दों की अदालत में अपराधियों के कटघरे में खड़े एक निर्दोष आदमी का हलफनामा है।''

धूमिल ''कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।''

पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण

ड्राइडन ''स्पष्ट संगीत कविता है।''

जान्सन ''छन्दमयी वाणी कविता है।''

मैथ्यू आरनोल्ड ''सत्य तथा काव्य सौंदर्य के सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित उपबंधों के अधीन जीवन की समीक्षा का नाम काव्य है।''

जान मिल्टन ''सरल, प्रत्यक्ष तथा रागात्मक अभिव्यक्ति काव्य है।''

वर्ड्सवर्थ ''शान्ति के क्षणों में स्मरण किये हुए प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छलन कविता है।''

एडगरे एलन ''काव्य सौन्दर्य की लयपूर्ण सृष्टि है।''

मैथ्यू आर्नल्ड ''कविता मूल रूप से जीवन की आलोचना है।''

कालरिज ''सर्वोत्तम् व्यवस्था में सर्वोत्तम शब्द ही कविता है।''

हडसन ''कविता कल्पना और संवेग के द्वारा जीवन की व्याख्या है।

निष्कर्ष उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काव्य की सर्वमान्य परिभाषा दे पाना कठिन है, क्योंकि कविता प्रत्येक काल में अपना रूप बदलती है। विद्वान् अपने–अपने ढंग से काव्य की परिभाषा देते हैं तथा इन परिभाषाओं के आधार पर आधुनिक काल की नई कविता खरी नहीं उतरती।

हिंदी साहित्य रेडियो

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

काव्यगुण

काव्यगुण का अर्थ है– दोषाभाव, शोभाकारी या आकर्षक धर्म।

भरतमुनि के अनुसार – दोष का विपर्यय गुण है। गुण के प्रतिष्ठाता आचार्य वामन हैं, जिनके अनुसार गुण काव्य–मूल शोभा (सौंदर्य) के तत्त्व हैं (काव्यशोभायाः कर्तारौ धर्मः गुणः)। वस्तुतः, काव्य की शोभा को संपादित करने वाला तत्त्व या विशेषता 'गुण' अथवा काव्यगुण है। आनंदवर्द्धन ने गुणों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं माना और इसे रसाश्रित स्वीकार किया है। मम्मट, विश्वनाथ की भी यही मान्यता है।

गुणों की संख्या –

गुणों की संख्या के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद है। भारतमुनि, दण्डी ने 10, वामन ने 20, भोज ने 24, (जो बाह्य, आभ्यन्तर और वैशेषिक भेदों में 72 होते हैं), अग्निपुराणकार ने 18 गुण माना है। कुंतक ने गुणों का इन सबसे भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए सिर्फ 2 गुण (औचित्य, सौभाग्य) माने हैं। आनंदवर्द्धन ने रस के धर्मरूप में गुण को माना और चित्त की 3 अवस्थाओं (द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्व) के आधार पर 3 गुणों–माधुर्य, ओज और प्रसाद को स्वीकार किया है। मम्मट ने 10 गुणों का खंडन कर आनंदवर्द्धन द्वारा प्रतिपादित 3 गणों को ही सिद्ध किया है। हिन्दी के रीति आचार्यों ने उक्त 3 गुणों को ही स्वीकार किया है। देव ने भरतमुनि, दंडी के 10 गुणों को स्वीकार करते हुए यमक और अनुप्रास मिलाकर 12 गुण बताये हैं। रामचंद्र शुक्ल ने गुण को रसाश्रित माना जबकि श्यामसुंदर दास ने इसे शैली के अंतर्गत स्वीकार किया है।

मम्मट, आनंदवर्द्धन द्वारा प्रतिपादित निम्नांकित तीन गुणों को भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है।

1. माधुर्य गुण

माधुर्य का अर्थ है– श्रुतिसुखदाता, समासरहितता, आर्द्रता, चित्त को द्रवित करने की विशेषता, भावमयता, अह्लादकता इत्यादि। देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार–जिस रचना को पढ़कर या सुनकर हृदय में द्रुति उत्पन्न हो, उसे माधुर्य गुण कहते हैं। द्रुति का अर्थ पिघलना या द्रवित होना है। कन्हैयालाल पोद्दार के शब्दों में–जिस काव्यरचना से अंतःकरण आनंद से द्रवीभूत हो जाये, उसमें माधुर्य गुण होता है। शृंगार, करुण एवं शान्त रसों के लिए यह गुण उपयुक्त होता है।

भरतमुनि के अनुसार – माधुर्य का अर्थ 'श्रुतिमधुरता'; दण्डी के अनुसार रसमयता (रस से सम्पन्न) , वामन के अनुसार उक्ति वैचित्र्य और मम्मट के अनुसार माधुर्य का अर्थ – आह्लादकता एवं शृंगार रस में द्रवित करने की विशेषता है। मम्मट ने काव्य–गुण को परिभाषित करते हुए कहा है कि–

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम्।

करुणे विप्रलम्भे तत् शांते चातिशयात्वितम्।।

माधुर्य गुण के व्यंजक –

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार माधुर्य गुण के निम्नांकित व्यंजक हैं –

1. सभी वर्गाक्षर (ट वर्ग को छोड़कर) अर्थात् क वर्ग, च वर्ग, त वर्ग, प वर्ग।
2. संयुक्ताक्षर का प्रायः अभाव ; यदि संयुक्ताक्षर हो तो पंचमाक्षर के या अनुस्वार के साथ। जैसे अंग, नंदन चुंबन, संशय।
3. लघु र,ण ; जैसे – रवि, परिणत
4. समास का अभाव अथवा समास की अल्पता (समास बड़े नहीं हों या हो तो छोटे–छोटे)

उदाहरण –

1. किंकण कंकण नूपुर सुनि। कहत लखन सन राम हृद गुनि। – तुलसी
2. वर दे वीणावादिनी! वर दे।
   नव गति, नव लय, ताल छंद नव
   नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रव
   नव नभ के नव विहग वृन्द को
   नव पर, नव स्वर दे। – निराला

2. ओज गुण

ओज का शाब्दिक अर्थ है– तेज, दीप्ति, जोश, आवेग इत्यादि। जिस काव्य को पढ़ने या सुनने से मन में ओज, तेज, उत्साह, साहस, पौरुष, वीरता, आवेश इत्यादि का संचार हो, उसे ओज गुण कहते हैं। यह वीर, रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रस के लिए उपयुक्त होती है।

दण्डी के अनुसार समासयुक्त पदों की बहुलता से ओज गुण होता है। वामन अक्षरविन्यास का संश्लिष्ट, संयुक्ताक्षरों का प्रयोग ओज गुण के लिए आवश्यक मानते हैं। मम्मट ने ओजगुण के विषय में कहा है कि –

दीप्त्यात्म विस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः

वीभत्स रौद्ररसयोः तस्याधिक्यं क्रमेण च।।

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने ओज गुण के व्यंजक को माधुर्य गुण बिल्कुल विपरीत बताते हुए इसके व्यंजक इस प्रकार प्रतिपादित किये हैं –

1. टवर्ग (माधुर्य गुण में टवर्ग के अतिरिक्त व्यंजन रहते हैं)।
2. संयुक्ताक्षरों का आधिक्य।
3. रेफ का अधिक प्रयोग। रेफ का प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है – किसी वर्ण के ऊपर, जैसे–अर्क, कर्क, कर्कट ; या वर्ण के नीचे, जैसे – वक्र शुभ्र तीव्र।
4. समास का बाहुल्य।

   उदाहरण –

   1. हिमाद्रि–तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
      स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।। – (चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद)
   2. मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक
      मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वी अनेक। – (पुष्प की अभिलाषा, माखन लाल चतुर्वेदी)

3. प्रसाद गुण

प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है – प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित होना। भरतमुनि के अनुसार जिसमें स्वच्छता, सरलता और सहजग्राह्यता हो अर्थात् सुनते ही अर्थबोध हो जाये उसे प्रसाद गुण कहते हैं। देवेन्द्रनाथ शर्मा कहते हैं कि – जिस गुण से युक्त रचना अनायास हृदय में व्याप्त हो जाये, वह प्रसाद गुण कहलाता हैं दंडी के अनुसार – प्रसिद्ध अर्थों में शब्द का ऐसा प्रयोग, जिसे सुनते ही अर्थ समझ में आ जाये 'प्रसाद गुण' है। वामन ने प्रसाद में प्रसाद में शौथिल्य की विशेषता मानी है और इसे ओजगुण का विरोधी कहा है। मम्मट ने कहा है कि – जैसे सूखे ईंधन में अग्नि तथा स्वच्छ वस्त्र में जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्त को रस में और रचना में तुरंत व्यक्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। देखें, मम्मट का कथन –

शुष्केन्धनाग्निवत स्वच्छ जलवत सहसैव यः

व्याप्नोत्यत् प्रयादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः।

प्रसाद गुण का व्यंजक –

प्रसाद गुण का एकमात्र व्यंजक सरल, सहज शब्दावली का प्रयोग है। यह सभी रसों में उपयोगी होता है।

उदाहरण –

1. कुछ भी बन, बस कायर मत बन, ठोकर मार, पटक मत माथा
   तेरी राह रोकते पाहन, कुछ भी बन, बस कायर मत बन। **– नरेन्द्र शर्मा**
2. सीस पगा न झगा तन मैं प्रभु, जानै को आहि बसै केहि ग्रामा
   धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पांय उपानहु की नहीं सामा
   द्वार खरौ द्विज दुर्बल देख रहयौ चकि सौ बसुधा अभिरामा

पूछत दीनदयाल के धाम बतावत, आपनौ नाम सुदामा।। **– नरोत्तमदास**

हिंदी साहित्य

काव्य रीति

- 'रीति' शब्द की व्युत्पत्ति– 'रीति' शब्द संस्कृत की 'रीङ्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका मूल अर्थ होता हैं–'मार्ग'
- 'रीति' **शब्द का अर्थ– शब्दकोश के अनुसार** 'रीति' शब्द के 'मार्ग', 'पंथ', 'वीथि', 'पद्धति', 'प्रणाली', 'शैली' इत्यादि अनेक अर्थ ग्रहण किये जाते है।
- 'काव्य रीति' का अर्थ– किसी भी काव्य की रचना करते समय कवि के द्वारा काव्य लेखन के लिए जो शैली काम में ली जाती है, उसे काव्य रीति कहा जाता है।
- 'रीति' की परिभाषा– आचार्य वामन को रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने स्वरचित 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' रचना में 'रीति' की परिभाषा देते हुए लिखा है–
- ''विशिष्ट पर रचना रीतिः'' ''विशेषोगुणात्मा'' अर्थात् कवि/लेखक के काव्य लेखन की अपनी विशिष्ट गुणशैली ही काव्य रीति कहलाती है। इसका संबंध 'गुण' से माना जाता हैं।

  काव्य की आत्मा 'रीति'– रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। यथा–

  ''रीतिरात्मा काव्यस्य''
- 'रीति' का नामकरण– अलग–अलग आचार्यों के द्वारा काव्य रीति को निम्नानुसार अलग–अलग नामों से पुकारा गया है। यथा–

क्र. सं.	आचार्य का नाम	नामकरण
1.	आचार्य वामन	रीति
2.	आचार्य कुन्तक	मार्ग
3.	आचार्य मम्मट	वृत्ति
4.	आचार्य आनंदवर्धन	पद संघटना
5.	आचार्य विश्वनाथ	पद संघटना
6.	आचार्य राजशेखर	वचन विन्यास क्रम
7.	आचार्य दण्डी	मार्ग
8.	आचार्य भरतमुनि	वृत्ति (संकेत मात्र)

'रीति' के भेद–

1. आचार्य वामन के रीति के निम्न तीन भेद स्वीकार किये है।

(अ) वैदर्भी (ब) गौडी (स) पांचाली

2. आचार्य कुंतक ने रीति को 'मार्ग' कहकर उसके तीन भेद माने है।

(अ) सुकुमार मार्ग (ब) विचित्र मार्ग (स) मध्यम मार्ग

3. आचार्य मम्मट ने रीति को 'वृत्ति' कहकर उसके तीन भेद माने है।

(अ) उपनागरिका वृत्ति (ब) परुषा वृत्ति (स) सुकोमला वृत्ति

4. सर्वप्रथम आचार्य रूद्रट ने समास के आधार पर 'लाटी' नामक चौथी रीति की परिकल्पना प्रस्तुत की।
5. आचार्य राजशेखर एवं आचार्य श्रीपद ने निम्न दो रीतियाँ अलग से स्वीकार की है।

(अ) मैथिली रीति (ब) मागधी रीति

6. आचार्य भोजराज ने भी 'अवंती' नामक एक अन्य काव्य–रीति की परिकल्पना प्रस्तुत की है।

सारांश– वर्तमान में सभी आचार्यो के द्वारा सर्वमान्य रूप में काव्य रीति के मख्यतः निम्न तीन भेद ही स्वीकार किये जाते है।

1. वैदर्भी रीति 2. गौडी रीति 3. पांचाली रीति

1. वैदर्भी रीति –

1. इस रीति में सुकोमल एवं सुकुमार (श्रुतिमधुर एवं संगीतात्मक) वर्णों का प्रयोग किया जाता है।
2. इस रीति में संयुक्ताक्षरों का अभाव पाया जाता है।
3. इस रीति में 'ट' वर्गीय वर्णों (विशेषतःमहाप्राण वर्णों ठ, ढ) का अभाव पाया जाता है।
4. इस रीति में सामासिक पदों का भी पूर्ण अभाव पाया जाता है।
5. यह रीति श्रृंगार, हास्य, करुण इत्यादि रसों की रचना के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
6. आचार्य दण्डी ने इस रीति में इस रीति में अपने द्वारा प्रतिपादित सभी दस गुणों का समावेश माना है, परन्तु आचार्य मम्मट इसमें केवल 'माधुर्य' गुण ही स्वीकार करते है।
7. प्रारम्भ में 'विदर्भ' प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयुक्त किये जाने के कारण इसका नाम वैदर्भी रीति पडा है।

''माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यतै।।''

उदाहरण

(अ) ''राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परिछाँहि।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाँहि।।''

प्रस्तुत पद में संयुक्ताक्षरों एवं सामासिक पदों का तो पूर्ण अभाव है। 'ट' वर्गीय वर्णों के अन्तर्गत केवल दो जगह अल्पप्राण 'ट' वर्ण का प्रयोग हुआ है। इसकी पदरचना सुकोमल है। अतएवं यहाँ वैदर्भी रीति है।

(ब) ''देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहीं नैननि के जल सों पग धोये।''
(स) ''रस सिंगार मज्जन किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।।''
(द) मृदु–मंद–मंद मंथर मंथर, लघु तरणि हंसिनी–सी सुंदर,
तिर रही खोल पालों के पर।
(य) तुम अलिंगन करते हिम कर नाचती हिलोरें सिहर–सिहर
सौ–सौ बाँहों में बाँहे भर सर में, आकुल उठ उठ गिरकर।

2. गौडी रीति–

1. इस रीति में कठोर वर्णों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
2. इस रीति में सामासिक पदों एव संयुक्त वर्णों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
3. इस रीति में 'ट' वर्गीय महाप्राण ध्वनियों का अधिक प्रयोग किया जाता है।
4. यह रीति वीर, रोद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों की रचना के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है।
5. आचार्य दण्डी ने इस रीति में 'ओज' व 'कांति' गुणों की प्रधानता मानी जाती है जबकि आचार्य मम्मट इसमें ओज गुण की प्रधानता मानते है।
6. प्रारम्भ में 'गौड' प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयुक्त किये जाने के कारण इसका नाग गौडी रीति पड है।

'' ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुनः।

समासबहुला गौडी वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।।''

उदाहरण–

(अ) हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढै चलो बढै चलो।।

प्रस्तुत पद में अनेक संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है। 'हिमाद्रि', 'स्वयंप्रभा', 'समुज्ज्वला', 'आमर्त्य' जैसे अनेक सामासिक पदों का प्रयोग हुआ है। 'दृढ', 'बढै' जैसे पदों में 'ट' वर्गीय महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। अतएव यहाँ गौडी रीति मानी जाती है।

(ब) बोल्लहिं जो जय–जय मुण्ड–रुण्ड प्रचण्ड सिर बिनु धावही।
खप्परन्हि खग अलुज्झि जुज्झहिं भटन्ह दहावहीं।
(स) हय रुण्ड गिरे गज झुण्ड गिरे, कट कट अवनि पर मुण्ड गिरे।
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे, लडते–लडते अरि झुण्ड गिरे।।
(द) सृष्टि दृष्टि के अंजन रंजन ताप विभंजन बरसो।
व्यग्र उदग्र जगज्जननी के अये अग्रस्तन बरसो।।
(य) 'कटिकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहिं।'–तुलसी
(व) महाबीर बरिबंड भये महि–मंडल–मंडल
निज–भुज दंड उदंड चंड–अरि–मुंड–बिहंडन।। –रत्नाकर

3. पांचाली रीति

1. यह रीति वैदर्भी एवं गौडी दोनों के बीच की रीति मानी जाती है।
2. इसमें संयुक्ताक्षरों, सामासिक पदों एवं 'ट' वर्गीय वर्णों का भी कुछ मात्रा में प्रयोग किया जा सकता हैं।
3. यह रीति भी वैदर्भी की तरह श्रंगार, हास्य, करुण आदि रसों की रचना के लिए उपयुक्त मानी जाती है।
4. आचार्य दण्डी इस रीति में प्रसाद व माधुर्य गुणों की प्रधानता मानते है, जबकि आचार्य मम्मट इसमें केवल प्रसाद गुण की प्रधानता मानते है।
5. प्रारम्भ में पंचाल प्रदेश के कवियों के द्वारा अधिक प्रयोग में लिये जाने के कारण इसका नाम पांचाली रीति पडा है।

''समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता''(विश्वनाथ)

उदाहरण–

(अ) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौं निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
खानि कबौं इन आँखिन ते ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं।
कौटिक ह्वै कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।

प्रस्तुत पद में सामासिक पदों का तो पूर्ण अभाव है परन्तु कुछ स्थानों पर 'ट' वर्गीय वर्णों एवं सयुक्तक्षरों का प्रयोग हो गया है, अतएव यहाँ पांचाली रीति मानी जाती है।

(ब) राति न सुहात, न सूहात परभात आली।
जब मन लागि जात काहू निरमोही सौ।।
(स) मैंने विदग्ध हो जान लिया अन्तिम रहस्य पहचान लिया।
मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।।
(द) युग–युग चलती रहे कठोर कहानी, रघुकुल में थी एक अभागिन रानी।
निज जन्म–जन्म में सुने जीव यह मेरा, धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।।

(य) गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष–विभंजन।।(तुलसी)
(व) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग–भरी, जुही की कली। –निराला

महत्त्वपूर्ण तथ्य–

- भरत के नाट्यशास्त्र में 'रीति' के लिए 'प्रकृति' शब्द प्रयुक्त हुआ हैं। भरतमुनि ने भारतवर्ष में प्रचलित 4 प्रकृतियों – 1. आवंती (पश्चिम) 2. दक्षिणात्य (दक्षिण) 3. पांचाली (मध्यप्रदेश) 4. मागधी (उडीसा–मगध) का उल्लेख किया है।
- दण्डी ने रीति के लिए 'मार्ग' तथा 'वर्त्म' शब्द का प्रयोग किया। साथ ही, रीति के आधारभूत 10 काव्यगुणों का उल्लेख किया।
- वामन की रीति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन 'पांचाली' नामक तीसरी रीति की उद्‌भावना है। वामन से पूर्व गौडी और वदर्भी दो मार्ग (रीतियाँ) स्वीकार्य थे। वामन ने रीतियों की संख्या तीन कर दी। वामन ने रीति को 'पद–रचना' मानते हुए गुणों में ही उसका मूल तत्त्व माना।
- रुद्रट ने रीतियों की संख्या में बढोत्तरी कर उसकी संख्या चार कर दी। 'लाटी' नामक चौथी रीति रुद्रट की देन हैं।
- आनंदवर्द्धन ने रीति के लिए 'संघटना' शब्द प्रयुक्त किया एवं रीति को रसाश्रयी माना। इन्होंने रीति को रसस्वरूप सौंदर्य का साधन कहा। इन्होंने रुद्रट की 'लाटी' रीति को स्वीकार नहीं किया किन्तु समास को रीति का मूल तत्त्व अवश्य माना।
- कुंतक ने तीन रीतियों को 3 मार्ग की संज्ञा दी– 1. सुकुमार मार्ग (जिसमें रस और भावों का नैसर्गिक निर्वाह होता है।) 2. विचित्र– मार्ग (जिसमें कलापक्ष महत्त्वपूर्ण होता है) और 3. मध्यम मार्ग (जिसमें दोनों का मिश्रण होता है)

हिंदी साहित्य

काव्य दोष

आचार्य मम्मट ने अपनी काव्य परिभाषा में दोषहीनता को काव्य का एक लक्षण मानते हुए लिखा है :

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि''

यहां प्रयुक्त 'अदोषौ' का तात्पर्य दोषहीनता से है। काव्य वह शब्दार्थ है जो दोषहीन, गुणयुक्त और कभी–कभी अलंकार रहित होता है।

''मुख्यार्थहति निर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः,

उभयोपयोगिन : स्युःशब्दाद्या तेन तेष्वापि सः।''

अर्थात् जो काव्य की रसानुभूति में बाधक हो या जिसके द्वारा किसी उक्ति के मुख्यार्थ को समझने में किसी प्रकार की रुकावट पडती हो, उसे ही दोष कहते है।

काव्य दोष की परिभाषा

काव्यास्वाद में बाधक उद्वेगजनक तत्व काव्य दोष कहलाते हैं : ''उद्वेगजनको दोषः'' (अग्निपुराणकार)

ये दोष काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति में बाधा पहुंचाते हैं। दोष शब्द, अर्थ और रस–इन तीनों के सौन्दर्य में व्याघात उत्पन्न करता है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, ''दोषोस्तस्यापकर्षकाः।'' अर्थात् जो काव्य की रमणीयता में अपकर्षक हो, वही दोष है।

काव्य दोषों से काव्य का माधुर्य एवं सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और काव्यानन्द में व्याघात पडता है। इसीलिए दोषहीन काव्य को उत्तम काव्य माना गया है।

आचार्य वामन के अनुसार, ''गुणविपर्ययात्मानो दोषः''।

अर्थात् गुण के विरोधी तत्वों को दोष कहते है।

काव्य दोषों के भेद – काव्य दोष तीन प्रकार के होते हैं :

(1) शब्द दोष (2) अर्थ दोष (3) रस दोष

इन दोषों पर आचार्य मम्मट एवं विश्वनाथ ने पर्याप्त विचार किया है। प्रमुख काव्य दोषों का विवरण निम्नवत् है :

(1) श्रुति कटुत्व दोष – जो शब्द सुनने में अप्रिय लगे तथा कठोर प्रतीत हों, उनके कारण काव्य में श्रुति कटुत्व दोष आता है। जैसे :

भर्त्सना से भीत हो वह बाल तब चुप हो गया।

यहां 'भर्त्सना' में श्रुति कटुत्व दोष है।

(2) च्युत संस्कृति दोष – जहां किसी शब्द का प्रयोग व्याकरण के प्रतिकूल होता है, वहां च्युत संस्कृति दोष होता है। जैसे :

इस निराशता को छोडो, आशा से लो काम।

यहां 'निराशता' शब्द व्याकरण की दृष्टि से गलत है अतः च्युत संस्कृति दोष है।

(3) अश्लीलत्व दोष – जहां काव्य में अश्लील शब्दों का प्रयोग हो वहां अश्लीलत्व दोष होता है। यथा :

मिची आंख पिय की निरखि वायु दीन तत्काल

यहां 'वायु' का तात्पर्य अपान वायु (पाद) से है अतः अश्लीलत्व दोष है।

(4) ग्राम्यत्व दोष – साहित्यिक रचना में बोलचाल के ग्रामीण शब्दों का प्रयोग होने पर ग्राम्यत्व दोष माना जाता है, जैसे :

मूंड़ पै मुकुट धरे सोहत गोपाल हैं।

यहां सिर के लिए 'मूंड़' शब्द का प्रयोग हुआ है जो ग्राम्यत्व दोष से युक्त है।

(5) अप्रतीतत्व दोष – लोक व्यवहार में न प्रयुक्त होने वाले शास्त्रीय शब्दों का काव्य में प्रयोग होने पर अप्रतीतत्व दोष होता है, यथा :

विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देत।

यहां विष शब्द का प्रयोग जल के लिए होता है, जो सामान्यतः लोक व्यवहार में प्रयुक्त नहीं होता अतः अप्रतीतत्व दोष है।

(6) क्लिष्टत्व दोष – दृष्टकूट पदों में प्रयुक्त ऐसी शब्दावली जिसका अर्थ गुणा भाग करके कठिनाई से निकलता है, क्लिष्टत्व दोष से युक्त मानी जाती है, यथा :

नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात

गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण के वियोग में यदि हम नक्षत्र (27), वेद (4), ग्रह (9) जोड़कर अर्थात् 27+4+9 = 40 का आधा अर्थात् 20 (बीस) या 'विष' खा लें तो हमें कौन रोकेगा। यहां क्लिष्टत्व दोष है।

(7) न्यून पदत्व दोष – जहां अभीष्ट अर्थ को सूचित करने वाले पद की कमी हो और अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कोई शब्द जोड़ना पड़े वहां न्यून पदत्व दोष होता है, जैसे :

''पानी, पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु''

पानी, पावक पवन, और प्रभु साधु और असाधु के साथ समान व्यवहार करते हैं –कवि यह कहना चाहता है, किन्तु समान व्यवहार शब्द को यहां छोड़ दिया गया है जिससे अर्थ में बाधा उत्पन्न हो रही है, अतः न्यून पदत्व दोष है।

(8) अधिक पदत्व दोष – जहां काव्य में अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया जाए, वहां अधिक पदत्व दोष होता है। ऐसे अनावश्यक शब्दों को हटा देने से काव्य का सौन्दर्य बढ़ता है, घटता नहीं। यथा :

लपटी पुहुप पराग पद सनी स्वेद मकरन्द

पराग तो पुष्प का ही होता है अतः यहां 'पुहुप' शब्द अनावश्यक है इसलिए अधिक पदत्व दोष है।

(9) अक्रमत्व दोष – जहां कोई पद उचित स्थान पर प्रयुक्त न होकर अनुचित स्थान पर प्रयुक्त हो और उसका क्रम जोड़ने में कठिनाई हो वहां अक्रमत्व दोष होता है, जैसे :

विश्व में लीला निरन्तर कर रहे हैं मानवी

यहां मानवी शब्द लीला से पहले प्रयुक्त होना चाहिए। वे प्रभु इस संसार में निरन्तर मानवी लीला कर रहे हैं।

(10) दुष्क्रमत्व दोष – जहां शास्त्र अथवा लोक के विरुद्ध क्रम होता है, वहां दुष्क्रमत्व दोष माना जाता है, यथा :

''नृप मो कहं हय दीजिए अथवा मत्त गजेन्द्र''

याचक को पहले हाथी मांगना चाहिए और फिर हाथी न मिलने पर घोड़े की याचना करनी चाहिए, किन्तु यहां पहले 'हय' अर्थात् घोड़े की और तदुपरान्त हाथी की याचना करके लोक विरुद्ध क्रम रखा गया है अतः दुष्क्रमत्व दोष है।

(11) पुनरुक्ति दोष – जहां किसी शब्द से किसी अर्थ की प्रतीति हो जाने पर भी उसी अर्थ वाले शब्द का दुबारा प्रयोग किया गया हो, वहां पुनरुक्ति दोष होता है, यथा :

सब कोऊ जानत तुम्हें सारे जगत जहान।

यहां जगत के बाद जहान का प्रयोग अनावश्यक रूप से करने से पुनरुक्ति दोष आ गया है।

(12) रस दोष – 1. जहां भाव व्यंग्य रूप में न होकर स्वयं ही अपना वर्णन करने लगे वहां स्वशब्द वाच्य रस दोष होता है, जैसे :

विस्मृति आ अवसाद घेर ले

नीरवते बस चुप कर दे।

यहां नीरवता की स्थिति में चुप कर दे कहने से स्वशब्द वाच्य रस दोष आ गया है।

वर्ण प्रतिकूलता के कारण कहीं–कहीं इस प्रकार का रस दोष आ जाता है। जैसे श्रृंगार रस में कठोर वर्णों का प्रयोग या वीर रस में कोमल वर्णों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। यथा :

''मुकुट की उटक लटक विवि कुण्ड कौ

भौंह की मटक नेंक आंखिन दिखाउ रे।।''

यहां श्रृंगार रस में 'ट' जैसे कठोर वर्ण का बारम्बार प्रयोग होने से रस दोष है।

हिंदी साहित्य वेबसाइट

छंद

परिभाषा – छंद शब्द 'छद्/चद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है – आह्लादित करना। छंद वह रचना है, जो वर्ण अथवा मात्रा की संख्या से नियमित हो। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम मात्रा, मात्रा–गणना तथा यति–गति इत्यादि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य–रचना 'छंद' कहलाती है।

- छन्द शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख हमारे आदिग्रन्थ ऋग्वेद के दशम मण्डल के 90 वें के नवें मंत्र में प्राप्त होता है।
- ''छन्दः पादौ तू वेदस्य'' अर्थात् छन्द को वेदपुरुष के 'पैर/पाद' अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है।
- लौकिक साहित्य के अन्तर्गत आचार्य पिंगल छन्द शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य माने जाते है तथा इनके द्वारा रचित 'छन्दःसूत्र' रचना छन्दशास्त्र की सर्वप्रथम रचना मानी जाती हैं।

वर्ण

परिभाषा – एक पूर्ण ध्वनि को वर्ण कहते हैं।

यह दो प्रकार का होते हैं –

(1) लघु वर्ण

(2) गुरु वर्ण।

(1) लघु वर्ण – व्याकरण में इसे ह्रस्व कहते हैं। इसकी एक मात्रा मानी जाती है और इसका चिह्न (।) है। सभी मूल स्वर या मूल स्वर युक्त व्यंजन लघु माने जाते हैं। जैसे – अ, इ, उ, कि, कु, कृ, त्य, भ्य इत्यादि।

लघु वर्ण का गुरु

नीचे बतायी स्थितियों में लघु वर्ण गुरु हो जाता है और उसकी दो मात्राएँ गिनी जाती हैं :–

(1) अनुस्वार से युक्त होने पर। जैसे – हंस में 'हं', चंद्र में 'चं' और संयम में 'सं' गुरु हैं।

(2) विसर्ग से युक्त होने पर। जैसे – दुःख में 'दुः' और निःसृत में 'निः' गुरु हैं।

(3) संयुक्त व्यंजन के पूर्व। जैसे – सत्य में 'स', मन्द में 'म' और वज्र में 'व' गुरु है।

(4) हलन्त व्यंजन के पूर्व। जैसे – सत् में 'स', महत् में 'ह' और राजन् में

'ज' गुरु हैं।

(5) चरण के अन्त में यदि आवश्यकता हो तो।

जैसे – वही हमारी यह मातृ–भूमि।

यह उपेन्द्रवज्रा छन्द का चरण है जिसके अन्त में गुरु वर्ण होना चाहिए। यहाँ उपेन्द्रवज्रा छन्द के चरण के अन्त में आने से **'मि'** लघु होने पर भी गुरु माना जायेगा।

(2) गुरु वर्ण – व्याकरण में इसे दीर्घ कहते हैं। गुरु की मात्रा दो गुना होती है और इसका चिह्न (ऽ) है। सभी दीर्घ स्वर या दीर्घ स्वरयुक्त व्यंजन गुरु माने जाते हैं। जैसे – आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, का, की, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः इत्यादि।

गुरु वर्ण का लघु

(1) ए और ओ वर्णों का जब ह्रस्व या एकमात्रिक उच्चारण हो।

जैसे –

जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू।

सो तेहि मिलहि, न कछु सन्देहू।।

इन पंक्तियों में जेहि, जेहि और तेहि में 'ए' का लघु उच्चारण है अतः उसकी एक–एक मात्रा ही गिनी जायेगी।

प्रभु दोउ चाप–खण्ड महि डारे।

इस पंक्ति में दोउ में 'ओ' का उच्चारण लघु है अतः उसकी एक ही मात्रा गिनी जायेगी।

(2) सवैया, मनहरण, कवित्त आदि छन्दों में आवश्यकता हो तो किसी भी गुरु वर्ण को लघु पढ़ा जा सकता है।

जैसे –

कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।

इन पंक्ति में 'लसी' का 'सी' और 'की' वर्ण लघु पढ़े जायेंगें।

धूरि–भरे अति सोहत स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।

इन पंक्ति में 'जू' और 'सी' लघु पढ़े जायेंगे।

वर्णों और मात्राओं की गिनती –

1. **क** = 1 वर्ण, 1 मात्रा
2. **क्ल** = 1 वर्ण, 1 मात्रा
3. **स्थ्य** = 1 वर्ण, 1 मात्रा
4. **र्क** = 1 वर्ण, 1 मात्रा
5. **का** = 1 वर्ण, 2 मात्रा
6. **क्ला** = 1 वर्ण, 2 मात्रा
7. **कल** = 2 वर्ण, 2 मात्रा
8. **क्लम** = 2 वर्ण, 2 मात्रा

9. **काल** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

10. **सत्य** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

11. **स्वास्थ्य** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

12. **कात्स्न्र्य** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

13. **सिन्धु** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

14. **सिंधु** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

15. **हंस** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

16. **हंसी** = 2 वर्ण, 4 मात्रा

17. **हँसी** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

18. **हाँसी** = 2 वर्ण, 4 मात्रा

19. **दुःख** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

20. **कार्य** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

21. **जगत्** = 2 वर्ण, 3 मात्रा

22. **श्रवण** = 3 वर्ण, 3 मात्रा

23. **अमृत** = 3 वर्ण, 3 मात्रा

24. **अमृत** = (उच्चारण = अम्मृत) = 3 वर्ण, 4 मात्रा

25. **कर्त्ता** = 2 वर्ण, 4 मात्रा

26. **तुम्हारा** = 3 वर्ण, 5 मात्रा

27. **तुम्मारा** = 3 वर्ण, 6 मात्रा

28. **कन्हैया** = 3 वर्ण, 5 मात्रा

29. **देश–प्रेम** (उच्चारण देश प्रेम) = 4 वर्ग, 6 मात्रा[2]

30. **देश–प्रेम** (उच्चारण देश प्रेम) = 4 वर्ग, 7 मात्रा[3]

गण और उनके भेद

परिभाषा – तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं।

गणों के आठ भेद हैं–

नाम	लक्षण	रूप	उदाहरण
1. मगण	तीनों गुरु	ऽ ऽ ऽ	माताारा सावित्री
2. नगण	तीनों लघु	। । ।	नसल अनल
3. भगण	आदि गुरु	ऽ । ।	मानस शंकर
4. जगण	मध्य गुरु	। ऽ ।	जभान गणेश

हिंदी साहित्य हब

5. सगण	अन्त्य गुरु	। । ऽ	सलगा	कमला
6. यगण	आदि लघु	। ऽ ऽ	यमाता	भवानी
7. रगण	मध्य लघु	ऽ । ऽ	राजभा	भारती
8. तगण	अन्त्य लघु	ऽ ऽ ।	ताराज	आदित्य

गणों को ज्ञात करने का सूत्र – नीचे लिखे सूत्र से ऊपर बताये गणों का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है–

य–मा–ता–रा–ज–भा–न–स–ल–गा

जिस गण का रूप ज्ञात करना हो उसके आदि वर्ण को सूत्र में देखो, फिर उसके आगे के दो वर्ण और ले लो। तीनों को मिलाने से जो शब्द या रूप बनेगा, वही उस गण का रूप होगा। उदाहरण के लिए, यगण का रूप ज्ञात करना है तो 'य' को और उसके आगे के दो वर्णों को, अर्थात् 'मा' और 'ता' को मिलाने से 'यमाता' हुआ। 'यगण' का रूप । ऽ ऽ होगा। इसी प्रकार 'मगण' का 'मातारा' अर्थात् ऽ ऽ ऽ होगा और 'तगण' का 'ताराज' (ऽ ऽ।) होगा।

यति और गति

यति का अर्थ – विराम या ठहराव। लयानुकूल विरामों को यति कहते है। प्रत्येक छंद लयबद्ध होता है। लय के अनुकूल छंद को पढ़ते समय पाठक को सांस लेने, रूकने अथवा विराम लेने के लिए उसमें जो ठहराव स्थल होते हैं, उन्हें 'यति' या विराम कहते हैं।

अर्थात् छन्द को पढ़ाते समय प्रत्येक चरण के अन्त में ठहरना पडता है। कभी–कभी चरण लम्बा होता है तो बीच में भी एक या अधिक स्थानों पर ठहरना पडता है। इस ठहरने को यति या विराम या विश्राम कहते हैं।

जैसे –

तारे डूबे, तम टल गया, छा गयी व्योम लाली।

मन्दाक्रान्ता छन्द में इस चरण के पहले चार वर्णों के बाद, फिर छह वर्णों के बाद और फिर सात वर्णों के बाद, इस प्रकार कुल तीन बार ठहरना पडता है।

गति – छंद के प्रवाह को 'गति' कहते हैं। छंद की गेयता उसको अलौकिकता या कमनीयता प्रदान करती है। यदि गण, मात्रा आदि छंद अंग हैं तो गति उसका जीवन है। गति का निश्चय कवि के पाठ एवं समय–बोध पर निर्भर है। गति का महत्त्व वार्णिक छंदों की तुलना में मात्रिक छंदों में अधिक होता क्योंकि वर्कित छंदों में लघु–गुरु का स्थान निश्चित होता है।

अर्थात् छन्द के पढ़ने की लय का नाम गति है। प्रत्येक छन्द की अपनी लय होती है। मात्रिक छन्दों और मुक्तक वर्णित छन्दों में लय का विशेष रूप से ध्यान रखना पडता क्योंकि मात्राएँ या वर्ण पूरे होने पर भी यदि गति नहीं होती तो छन्द नहीं बन पाता।

जैसे –

'बरखा–काल मेघ नभ छाये।'

चरण या पाद – किसी छंद की प्रधान यति पर समाप्त होने वाली पूर्ण पंक्ति उसका एक 'चरण' या 'पाद' कहलाती है। सामान्यतः छंद में 4 चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में मात्राओं एवं वर्णों की संख्या क्रमानुसार नियोजित रहती है।

क्रम – प्रत्येक सुगठित छंद का अपना क्रम होता है और वह मात्रा अथवा गणों की संख्या से लयबद्ध होता है। वर्ण या मात्रा की इसी व्यवस्था को क्रम कहते हैं। दूसरे शब्दों में, छंद में कहाँ लघु वर्ण हो और कहाँ गुरु वर्ण हो वर्णों की इस व्यवस्था को क्रम कहते है।

छंद के भेद –

छंदों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1. वैदिक छंद 2. लौकिक छंद

(अ) वैदिक छंद – वेद ग्रंथों के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले छंद वैदिक छंद कहलाते है। ये सात प्रकार के माने जाते है।

(ब) लौकिक छंद – लौकिक साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले छंद लौकिक छंद कहलाते हैं।

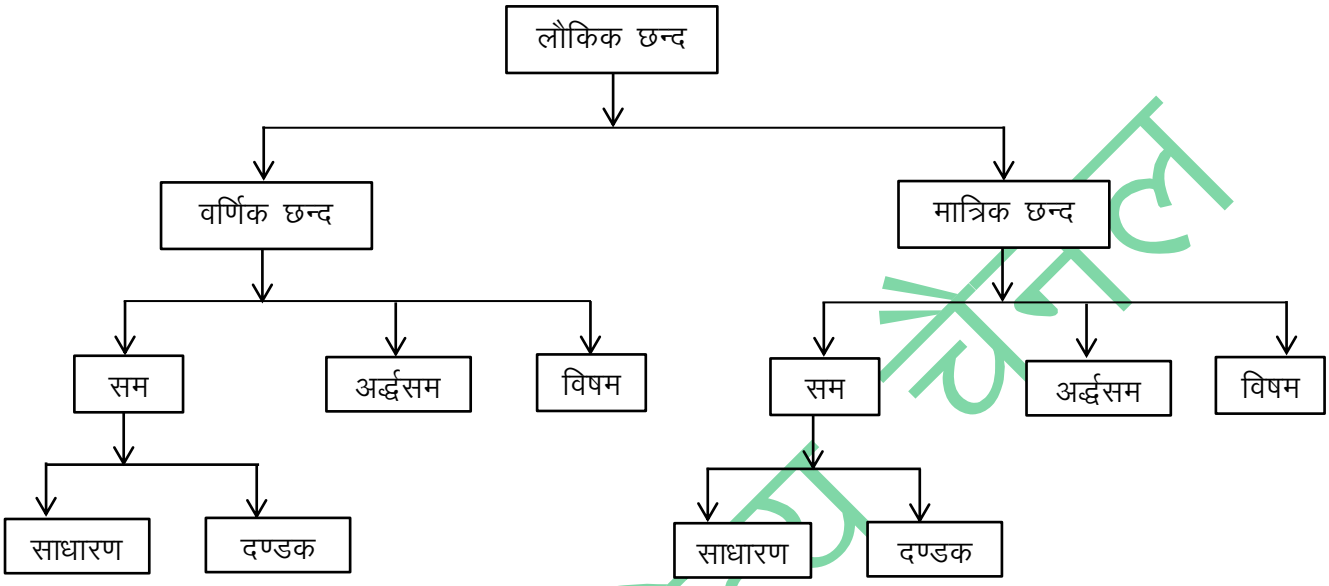

लौकिक छंद भी दो प्रकार के माने जाते है।

(1) मात्रिक या जाति छंद (2) वर्णिक या वृत्त छंद

1. मात्रिक या जाति छंद – जिस छंद की गणना मात्राओं के आधार पर की जाती है, उसे मात्रिक या जाति छंद कहते है, जैसे – आर्या, दोहा, सोरठा।

2. वर्णिक या वृत्त छंद – जिस छंद की गणना वर्णों के आधार पर होती है, उसे वर्णिक या वृत्त छंद कहते हैं, जैसे शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीडितम्, द्रुतविलम्बित, सवैया इत्यादि।

3. सम छंद – जिस छंद के चारों चरणों में समान लक्षण प्राप्त होते हैं, वह सम छंद कहलाता है, जैसे शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, सवैया, हरिगीतिका इत्यादि।

4. अर्द्धसम छंद – जिस छंद के आधे–आधे चरणों में (प्रायः विषम व सम चरणों में) समान लक्षण प्राप्त होते हैं, वह अर्द्धसम छंद कहलाता है, जैसे – पुष्पिताग्रा, वियोगिनी, दोहा, सोरठा इत्यादि।

5. विषम छंद – जिस छंद के न तो सभी चरण समान होते हैं तथा न ही आधे–आधे चरण समान होते हैं अपितु अलग अलग संख्या में समानता प्राप्त होती है तो वह विषम छंद कहलाता है। जैसे उपजाति, छप्पय, कुण्डलिया इत्यादि।

6. साधारण छंद – वर्णिक छन्दों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 1 से 26 तक वर्ण संख्या वाले छंद तथा मात्रिक छंदों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 1 से 32 तक मात्रा संख्या वाले छंद साधारण छंद कहलाते है।

7. दण्डक छंद – वर्णिक छंदों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 26 से अधिक वर्णसंख्या वाले छंद एवं मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में 32 से अधिक मात्रा संख्या वाले छंद दण्डक छंद कहलाते है।

मात्रा और वर्ण के विचार से **छंद के मुख्यतः 2 भेद होते हैं–** मात्रिक और वर्णिक। मात्रिक छंदों में दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई, बरवै, छप्पय, कुंडलिया इत्यादि प्रमुख हैं। वर्णिक छंदों में इन्द्रव्रजा, द्रुतविलम्बित, मंदाक्रान्ता मालिनी, शिखरिणी, सवैया, मत्तगयन्द, कवित्त इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

दोहा छंद

लक्षण –

- यह 24 मात्राओं वाला मात्रिक अर्द्धसम छंद है।
- इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में 13–13 एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में 11–11 मात्रायें होती हैं। अंत में लघु (।) होना आवश्यक है।
- इसके विषम चरणों में के आदि में जगण आना वर्जित माना जाता है, जबकि सम चरणों के अंत में एक लघु वर्ण आना आवश्यक है।
- यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
- तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण –

1. रहिमन धागा प्रेम का, मत तोङो छिटकाय।

।।।। ऽ ऽ ऽ । ऽ ।। ऽ ऽ ।। ऽ ।

टूटे से फिर ना जुङे, जुङे गाँठ पङ जाय।।

ऽ ऽ ऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ ऽ। ।। ऽ।

13 मात्रा **11 मात्रा**

2. मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय।

ऽऽ ।।ऽऽ ।ऽ ऽऽ ऽ।। ऽ। **– 24 मात्रायें**

जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुत होय।।

3. हंसा बगुला एक से, रहत सरोवर माँहि।

ऽ ऽ ।। ऽ ।। ऽ ।।। । ऽ।। ऽ।

बगुला ढूँढे माछरी, हंसा मोती खाँहि।।

।। ऽ ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ।

4. बङा भया तो क्या भया, जैसे पेङ खजूर।

। ऽ । ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ ऽ। । ऽ ।

पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ।। ऽ ऽ ।। ऽ।

5. जहां मंथरा की तरह, बसते दासी–दास।

आज्ञा–पालक राम को, मिलता है वनवास।।

हिंदी साहित्य

6. छाया माया एक सी, बिरला जाने कोय।

भगता के पीछे फिरे, सन्मुख भागे सोय।।

चौपाई छंद

लक्षण –

- यह मात्रिक सम छंद है।
- चौपाई के प्रत्येक चरण में 16 मात्रायें होती है।
- प्रत्येक चरण में अंत में जगण (।ऽ।) और तगण (ऽऽ।) नहीं आना चाहिए।
- यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
- तुक सदैव पहले चरण की दूसरे चरण के साथ व तीसरे की चौथे चरण के साथ मिलती है।
- इसके अंत में प्रायः दो गुरु (ऽऽ) रहते हैं।

उदाहरण –

1. मंगलभवन अमंगल हारी।

ऽ।। ।।। ।ऽ।। ऽऽ **– 16 मात्राएँ**

द्रबहु सो दशरथ अजिर बिहारी।।

2. जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,

।। ।। ऽ। ऽ। ।। ऽ।। **– 16 मात्राएँ**

जय कपीश तिहुँ लोक उजागर।

।। ।ऽ। ।। ऽ। ।ऽ।। **– 16 मात्राएँ**

राम दूत अतुलित बल धामा,

ऽ। ऽ। ।।।। ।। ऽ ऽ **– 16 मात्राएँ**

अंजनि पुत्र पवनसुत नामा।।

ऽ।। ऽ। ।।।।। ऽ ऽ **– 16 मात्राएँ**

3. धीरज धरम मित्र अरु नारी।

ऽ ।। ।।। ऽ। ।। ऽ ऽ

आपद काल परखिए चारी।।

ऽ।। ऽ। ।।। ऽ ऽ ऽ

4. रघुकुल रीति सदा चलि आई

।।।। ऽ। । ऽ ।। ऽ ऽ

प्राण जाय पर वचन न जाई

ऽ। ऽ। ।। ।।। । ऽ ऽ

हिंदी साहित्य

5. कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ।। ।।

कहत लषन सन राम हृदय गुनि

।।। ।।। ।। ऽ। ।।। ।। **– 16 मात्राएँ**

द्रुतविलम्बित छंद

लक्षण –

- इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते हैं।
- यह वर्णिक सम छंद होता है।
- इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है, जो क्रमशः नगण, भगण, भगण व रगण के रूप में लिखे जाते है।
- प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होने के कारण यह जगती जाति का छंद माना जाता है।
- तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।
- इसमें यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।

जिसका क्रम इस प्रकार होता है –

गण – न भ भ र

उदाहरण –

दिवस का अवसान समीप था

।।। ऽ ।।ऽ। ।ऽ। ऽ

गगन था कुछ लोहित हो चला

।।। ऽ ।। ऽ।। ऽ ।ऽ

तरु शिखा पर थी अब राजती,

।। ।ऽ ।।ऽ ।। ऽ।ऽ

कमलिनी कुछ वल्लभ की प्रभा

।।।ऽ ।। ऽ।। ऽ ।ऽ

कवित्त छंद

लक्षण –

- यह दण्डक श्रेणी का वर्णिक सम छंद होता है।
- इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं।
- इसमें 16,15 पर यति तथा अंतिम वर्ण गुरु (ऽऽ) होता है।
- इसे 'मनहरण' या घनाक्षरी भी कहते हैं।
- इसमें 8, 8, 8, 7 वर्णों पर यति रखने का विधान होता है।
- इसमें लघु–गुरु आदि के नियम लागू नहीं होते हैं, केवल वर्णों की संख्या को गिना जाता है।

उदाहरण –

1. हरित हरित हार[8], हेरत हियो हेरात[8] – 16 वर्ण

हरि हाँ हरिन नैनी[8] , हरि न कहूँ लहाँ।[7] – 15 वर्ण

बनमाली ब्रज पर, बरसत बनमाली,

बनमाली दूर दुख, केशव कैसे सहौं।

हृदय कमल नैन, देखि कै कमल नैन,

होहुँगी कमल नैनी, और हौं कहा कहौं।

आप घने घनस्याम, घन ही ते होते घन,

सावन के द्यौंस धन, स्या बिनु कौन रहौं।

2. पात भरी सहरी सकल सुत बारै–बारै,

केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।

सब परिवार मेरो याहि लागि है राजाजू,

दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।।

3. डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,

सुमन झिंगुला सौहें तन छबि भारी दै।

पवन झुलावै केकी कीर बतरावे 'देव'

कोकिल हलावे हुलसावे कर तारी दै।

पूरित पराग सो उतारो करै राई नोन,

कंजकली नायिका लतान सिर मारी दै।

मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,

प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।।

4. बिरह बिथा की कथा अकथ अथाह महा

कहत बनै न जौ प्रवीन सुकवीनि सौं।

कहै 'रत्नाकर' बुझावन लगै ज्यों कान्ह

ऊधौ कौं कहन हेतु ब्रज जुव तीनि सौं।

गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं

प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।

नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं

रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।

5. इन्द्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर

रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।

पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर

ज्यों सहस्त्र बाहु पर राम द्विजराज है।

दावा द्रुमदंड पर चीता मृग झुंड पर

भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर

त्यों मलेच्छ वंस पर सेर सिवराज है।

हरिगीतिका छंद

लक्षण –

- यह मात्रिक सम छंद होता है।
- प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं।
- 16, 12 पर यति एव अंत में लघु – गुरु (।ऽ) होता है।
- इसमें प्रत्येक चरण में 5 वीं, 12 वीं, 19 वीं व 26 वीं मात्रा लघु होती है।
- तुक प्रायः पहले चरण की दूसरे चरण से व तीसरे चरण की चौथे चरण से मिलती है।
- गीतिका के आरंभ में दो मात्राएँ जोड़ने से हरिगीतिका बन जाता है।

उदाहरण –

1. कहती हुई यों उत्तरा के, नेत्र जल से भर गये।

।। ऽ । ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ। ।। ऽ ।। । ऽ

हिम के कणों से पूर्ण मानो, हो गये पंकज नये।।

।। ऽ । ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ।। । ऽ

16 मात्राएँ **12 मात्राएँ**

2. अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महादुष्कर्म है

।। ऽ। ऽ ।। ऽ। ।। ऽ ।। । ऽ ऽ ऽ। ऽ

न्यायार्थ अपने बंधु को भी दण्ड देना धर्म है

ऽ ऽ । ।। ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ। ऽ

इस ध्येय पर ही कौरवों औ पाण्डवों का रण हुआ

।। ऽ। ।। ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ।। ऽ ।। ।ऽ

जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।

ऽ ऽ। ऽ।। ऽ। ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ।। । ऽ **– 28 मात्राएँ**

3. श्री रामचन्द्रकृपालुभजुमन, हरण भव भय दारुणं।

ऽ ऽ।।। ।ऽ। ।।।। ।।। ।। ।। ऽ ।ऽ

नवकंजलोचनकंजमुखकर, कंज पद कंजारुणं।

।। ऽ। ऽ।। ऽ। ।।।। ऽ। ।। ऽ ऽ ।ऽ

कन्दर्प अगणित अमित छबि नव, नील नीरद सुन्दरं।

ऽ ऽ। ।।।। ।।। ।। ।। ऽ। ऽ।। ऽ। ऽ

पटपीत मानहु तडित रुचि शुचि, नौमि जनक सुतावरं।।

।। ऽ। ऽ।। ।।। ।। ।। ऽ। ।।। ।ऽ। ऽ

16 मात्राएँ **12 मात्राएँ**

4. संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो

ऽ ऽ। ऽ ।। ऽ। ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ।। ।ऽ

चलते हुए निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो

।। ऽ ।ऽ ।। ऽ। ।। ।। ऽ। ऽ ऽ ।। ।ऽ

जीते हुए भी मृतक सम रहकर न केवल दिन भरो

ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।।। ।। ।।।। । ऽ। ।। ।ऽ

वर वीर बन कर आप अपनी, विघ्न बाधाएं हरो

।। ऽ। ।। ।। ऽ। ।। ऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ ।ऽ

5. कोई न मेरे राज्य में, भूखा तथा नंगा रहे

सुख का हिमालय हो खडा, सुख चैन की गंगा बहे

6. हे तात! हे मातुल! जहाँ हो, है प्रणाम तुम्हें वहीं

अभिमन्यु का इस भाँति मरना, भूल मत जाना कहीं

7. लघु लागि विधि की निपुणता, अवलोकि पुर सोभा सही

।। ऽ। ।। ऽ ।।। ऽ ।। ऽ। ।। ऽ ऽ ।ऽ

वन बाग कूप तडाग सरिता, सुभग सब सक को कही

।। ऽ। ऽ। ।ऽ। ।। ऽ ।।। ।। ।। ऽ ।ऽ

मंगल विपुल तोरण पताका, केतु गृह गृह सोहही

ऽ।। ।।। ऽ।। ।ऽ ऽ ऽ। ।। ।। ऽ। ऽ

वनिता पुरुष सुन्दर चतुर छवि, देखि मुनि मन मोहहीं

।। ऽ ।।। ऽ।। ।।। ।। ऽ। ।। ।। ऽ। ऽ

हिंदी साहित्य रेखा

सोरठा छंद

लक्षण –

- यह अर्द्धसम मात्रिक छंद होता है।
- यह दोहा छंद के विपरीत लक्षणों वाला छंद माना जाता है।
- इसके विषम चरणों में 11–11 मात्राएँ तथा सम चरणों में 13–13 मात्राएँ होती है।
- इसके सम चरणों के अन्त में जगण आना वर्जित माना जाता है जबकि विषम चरणों के अंत में एक लघु वर्ण आना आवश्यक है।
- यति प्रत्येक चरण के अंत में होती है।
- तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण –

1. जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरषु न जाहि कहि।

   ऽ। ऽ। ।। ऽ। ।। ।। ।।। । ऽ। ।।

   मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे।।

   ऽ।। ऽ।। ऽ। ऽ। ऽ। ।।।। । ऽ

   11 मात्राएँ **13 मात्राएँ**

2. कपि करि हृदय विचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।

   ।। ।। ।।। । ऽ। ऽ। ऽ। ऽ ऽ। ।।

   जनु असोक अंगार, लीन्हि हरषि उठिकर गहउ।।

   ।। । ऽ। ऽ ऽ। ऽ। ।।। ।।।। ।।।

   11 मात्राएँ **13 मात्राएँ**

3. सुनि कैवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।

   ।। ऽ।। ऽ ऽ। ऽ। । ऽ ऽ ।।। ऽ

   विहँसे करुणा ऐन, लखन जानकी सहित प्रभु।।

   ।। ऽ ।। ऽ ऽ। ।।। ऽ। ऽ ।।। ।।

   11 मात्राएँ **13 मात्राएँ**

4. सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर

   ।।। । ऽ।। ऽ। ।। । ऽ। ।। ।।। ।।

   सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल

   ।।। । ऽ।। ऽ। ।। ऽ । ऽ । ऽ। ।।

5. हिम्मत कीमत होय, बिन हिम्मत कीमत नहीं

ऽ।। ऽ।। ऽ। ।। ऽ।। ऽ।। ।ऽ

करे न आदर कोय, रद कागद ज्यूं राजिया

।ऽ। ऽ।। ऽ। ।। ऽ।। ऽ ऽ।ऽ

6. मतलब री मनुहार, चुपकै लावै चूरमो

बिन मतलब मनुहार, राब न पावै राजिया

7. अस विचार मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल

भजहु राम रघुवीर, करुनाकर सुन्दर सुखद

सवैया छंद

लक्षण

1. यह वर्णिक सम छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 22 से लेकर 26 तक वर्ण होते है।
3. वर्णों की संख्या एवं गणों की प्रकृति के आधार पर इस छंद के ग्यारह भेद किये जाते है।

यथा–

सवैया के ग्यारह भेद होते है–

मदिरा, मालती, सुमुखी, चकोर, दुर्मिल, किरीट, अरसात, अरविन्द, सुन्दरी, लवंगलता कुंदल

सवैया छंद के भेद व लक्षण

क्र.स.	सवैया का नाम	लक्षण	प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या	सवैया की जाति
1.	मदिरा सवैया	सात भगण + एक गुरु	22 वर्ण	आकृति
2.	मालती सवैया	सात भगण + दो गुरु	23 वर्ण	विकृति
3.	सुमुखी सवैया	सात जगण + एक लघु + एक गुरु	23 वर्ण	विकृति
4.	चकोर सवैया	सात भगण + एक गुरु + एक लघु	23 वर्ण	विकृति
5.	दुर्मिल सवैया	आठ सगण	24 वर्ण	संकृति
6.	किरीट सवैया	आठ भगण	24 वर्ण	संकृति
7.	अरसात सवैया	सात भगण + एक रगण	24 वर्ण	संकृति
8.	अरविंद सवैया	आठ सगण + एक लघु	25 वर्ण	अतिकृति
9.	सुन्दरी सवैया	आठ सगण + एक गुरु	25 वर्ण	अतिकृति
10.	लवंगलता सवैया	आठ जगण + एक लघु	25 वर्ण	अतिकृति
11.	कुंदलता/सुख सवैया	आठ सगण + दो लघु	26 वर्ण	उत्कृति

उदाहरण–

1. भस्म लगावत शंकर के अहि लोचन आनि परी झरिकै

ऽ ऽ ।ऽ । ।ऽ । ।ऽ । ।ऽ । ।ऽ । ।ऽ । ।ऽ

2. मानुष हो तु वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव की ग्वारिन

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ।

3. या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

4. यहि भाँति हरी जसुदा उपदेसहि भाषत नेह लहैं सुख सों धन।

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ।

5. सो कर मांगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारियो

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

6. हिये वनमाल रसाल धरे सिर मोर किरीट महा लसिबो

। ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

7. नित राम पदै अरविंदन को मकरंद पियो सुमिलिंद समान

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ।

8. जय राम रमा रमनं शमनं भाव ताप भयाकुल पाहिजनं

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

9. धन्य वही नर नारि सराहत या छवि काटत जो भव फंद

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ।

10. सुख शांति रहे सब ओर सदा अविवेक तथा अघ पास न आवे

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

11. सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न है जहँ एक घटी

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

12. सखि नील नंभः सर में उतरा यह हंस अहा तरता तरता

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

13. भजौ रघुनंदन पाप निकंदन श्री जग बंदन नित्य हये धर।

। ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ।

हमारी वेबसाइट पर Visit करें – www.hindisahity.com www.gkhub.in

रस का अर्थ व भेद

- भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में रस सिद्धान्त सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। रस सिद्धान्त का विशद एवं प्रामाणिक विवेचन भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही सर्वप्रथम उपलब्ध होता है।
- आचार्य विश्वनाथ – 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'
- काव्य के पठन – श्रवण, दर्शन से प्राप्त होने वाला लोकोत्तर आनन्द ही आस्वाद दशा में रस कहलाता है।
- रस की निष्पत्ति सामाजिक के हृदय में तभी होती है, जब उसके हृदय में रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव होकर सत्वगुण का उद्रेक होता है। इसमें ममत्व और परत्व की भावना तथा सांसारिक राग–द्वेष का पूर्णतया लोप हो जाता है।
- रस अखण्ड होता है। सहृदय को विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावों की पृथक्–पृथक् अनुभूति न होकर समन्वित अनुभूति होती है।
- रस वेद्यान्तर स्पर्श शून्य है।
- रस स्वप्रकाशानन्द तथा चिन्मय है।
- रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। (साहित्य दर्पण–आचार्य विश्वनाथ)
- रसानुभूति अलौकिक चमत्कार के समान है।
- रस को कुछ आचार्य सुख–दुखात्मक मानते हैं।
- रस मूलतः आस्वाद रूप है, आस्वाद्य पदार्थ नहीं है, फिर भी व्यवहार में 'रस का आस्वाद किया जाता है' ऐसा प्रयोग गौण रूप से प्रचलित है। इसलिए रस अपने रूप से जनित है।
- भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में रस सूत्र दिया है।
  'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पति'
  इस मत के अनुसार जिस प्रकार नाना व्यंजनों के संयोग से भोजन करते समय पाक रसों का आस्वादन होता है। उसी प्रकार काव्य या नाटक के अनुशीलन से अनेक भावों का संयोग होता है, जो आस्वाद–दशा में 'रस' कहलाता है।

रस के अवयव :

1. स्थायी भाव –

- मन के भीतर स्थायी रूप से रहने वाला सुषुप्त संस्कार या वासना को स्थायी भाव कहते हैं।
- स्थायी भाव अनुमूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधन सामग्री के संयोग से रस रूप में अभिव्यक्त होते हैं।
- स्थायी भाव ऐसा सागर है जो सभी विरोधी अविरोधी भावों को आत्मसात् करके अपने अनुरूप बना लेता है।
- मम्मट आदि आचार्यों ने (1) रति (2) हास (3) शोक (4) क्रोध (5) भय (6) जुगुप्सा (7) निर्वेद (8) विस्मय नौ स्थायी भाव माने हैं।
  रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
  जगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।
  निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।।
- भरत मुनि के समय प्रारम्भ में निर्वेद को छोड़ आठ भाव ही माने गए थे।
- परवर्ती काल में हिन्दी के कवियों एवं आचार्यों ने वात्सल्य रस का स्थायी भाव 'वत्सल' स्वीकार किया है तथा भक्ति रस में भक्तवत्सल्य रति को ग्यारहवाँ स्थायी भाव स्वीकार किया है।

2. विभाव –

- जो कारण हृदय में स्थित स्थायी भाव को जाग्रत तथा उद्दीप्त करें अर्थात् रसानुभूति के कारण को विभाव कहते हैं।

विभाव के दो भेद हैं –

(i) आलम्बन विभाव – जिस व्यक्ति या वस्तु के कारण स्थायी भाव जाग्रत होता है उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार काव्य या नाट्य में वर्णित नायक–नायिका आदि पात्रों को आलम्बन विभाव कहते हैं।

(ii) उद्दीपन विभाव – स्थायी भाव को उद्दीप्त या तीव्र करने वाले कारण उद्दीपन विभाव होते हैं।

नायक नायिका का रूप सौन्दर्य, पात्रों की चेष्टाएँ, ऋतु, उद्यान, चाँदनी, देश–काल आदि उद्दीपन विभाव होते हैं।

इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है –

(i) विषयनिष्ठ उद्दीपन विभाव

(ii) बाह्य उद्दीपन विभाव।

शारीरिक चेष्टाएँ, हाव–भाव विषयनिष्ठ उद्दीपन विभाव तथा प्राकृतिक वातावरण, देशकाल आदि बाह्य उद्दीपन विभाव होते हैं।

3. अनुभाव –

'अनुभावो भाव बोधक' अर्थात् भाव का बोध कराने वाले अनुभाव होते हैं।

- रसानुभूति में विभाव कारण रूप हैं तो अनुभाव कार्य रूप होते हैं। अनुभव कराने के कारण ही ये अनुभाव कहलाते हैं।
- आलम्बन उद्दीपन विभाव द्वारा रस को पुष्ट करने वाली शारीरिक मानसिक अथवा अनायास होने वाली चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं।
- भरत मुनि ने अनुभाव के तीन भेद (आंगिक, वाचिक, सात्त्विक) किए हैं। भानुदत्त ने इसके चार भेद माने जो परवर्ती आचार्यों ने स्वीकार किए –

(i) आंगिक या कायिक अनुभाव – शरीर की चेष्टाओं से व्यक्त कार्य, जैसे–भ्रू संचालन, आलिंगन, कटाक्षपात, चुम्बन आदि आंगिक अनुभाव होते हैं।

(ii) वाचिक अनुभाव – वाणी के द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति (परस्परालाप) इसमें होती है, इसे 'मानसिक' अनुभाव भी कहा गया है।

(iii) सात्विक अनुभाव – ये अन्तःकरण की वास्तविक दशा के प्रकाशक होते हैं। सत्व से उत्पन्न होने के कारण इन्हें सात्विक कहा जाता है। सात्विक अनुभाव आठ हैं–स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

(iv) आहार्य अनुभाव – नायक–नायिका के द्वारा पात्रानुसार, वेशभूषा, अलंकार आदि को धारण करना अथवा देशकाल का कृत्रिम रूप में उपस्थापन करना आहार्य अनुभाव कहलाता है।

4. व्यभिचारी (संचारी) भाव –

- विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्याभिचारिणः
- व्यभिचारी (संचारी) भाव स्थायी भाव के साथ–साथ संचरण करते हैं, इनके द्वारा स्थायी भाव की स्थिति की पुष्टि होती है। एक रस के स्थायी भाव के साथ अनेक संचारी भाव आते हैं तथा एक संचारी किसी एक स्थायी भाव के साथ या रस के साथ नहीं रहता है, वरन् अनेक रसों के साथ संचरण करता है, यही उसकी व्यभिचार की स्थिति है।

- संचारी भाव उसी प्रकार उठते हैं और लुप्त होते हैं जैसे जल में बुदबुदे और लहरें उठती हैं और विलीन होती रहती है।
- भरत मुनि ने तैंतीस संचारी भावों का उल्लेख किया है –

1. निर्वेद 2. ग्लानि 3. शंका 4. असूया 5. मद 6. श्रम 7. आलस्य 8. दैन्य 9. चिन्ता 10. मोह 11. स्मृति 12. धृति 13. व्रीडा 14. चपलता 15. हर्ष 16. आवेग 17. जडता 18. गर्व 19. विषाद 20. औत्सुक्य 21. निद्रा 22. अपस्मार 23. सुप्त 24. विबोध 25. अमर्ष 26. अवहित्था 27. उग्रता 28. मति 29. व्याधि 30. उन्माद 31. मरण 32. त्रास 33. वितर्क

रसों के प्रकार :

- नाट्यशास्त्र में आठ स्थायी भावों और उन पर आधृत आठ रसों की विवेचना प्रस्तुत की लेकिन पश्चवर्ती आचार्यों ने रसों की संख्या नौ निर्धारित की –
  'शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।
  वीभत्साद्भुतसंज्ञो चेच्छान्तोऽपि नवमो रसः।'
- 'नागानन्द' रचना के पश्चात् 'शान्त रस', महाकवि सूरदास की रचनाओं से 'वात्सल्य रस', 'भक्तिरसामृत सिंधु' और 'उज्जवलनीलमणि' नामक ग्रंथों की रचना के पश्चात् 'भक्ति रस' को स्वीकार किया गया। इस प्रकार रसों की कुल संख्या ग्यारह हो गई।

1. शृंगार रस –

- शृंगार रस को रसराज कहा जाता है।
- स्थायी भाव – रति
- आलम्बन विभाव – नायक या नायिका
- उद्दीपन विभाव – नायिका के कुच, नितम्बादि अंग, एकान्त, वन–उपवन, चन्द्र–ज्यौत्स्ना, वसन्त, पुष्प, नायिका अथवा अनुभाव के चेष्टाएँ – हावभाव, तिरछी चितवन, मुस्कान।
- संचारी भाव – तैंतीस संचारियों में उग्रता, मरण, आलस्य, जुगुप्सा को छोडकर शेष सभी संचारी भाव, मुख्यतः लज्जा, शर्म, चपलता।

शृंगार रस दो भागों में विभक्त किया गया है –

(i) संयोग शृंगार –

- आचार्य धनञ्जय – 'जहाँ अनुकुल विलासी एक–दूसरे के दर्शन–स्पर्शन इत्यादि का सेवन करते हैं। वह आनन्द से युक्त संयोग शृंगार कहलाता है।'
- आचार्य विश्वनाथ – 'जहाँ एक–दूसरे के प्रेम में अनुरक्त नायक–नायिका दर्शन–स्पर्शन आदि का सेवन करते हैं वह संयोग शृंगार कहलाता है।'
- संयोग–शृंगार के वर्ण्य विषय में प्रेम की उत्पत्ति, आलम्बन एवं क्रीडाएँ होती हैं। उत्पत्ति प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण, चित्र दर्शन या स्वप्न दर्शन द्वारा होती है। यथा–

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन में करत हैं नैनन ही सौं बात।। (बिहारी)

संयोग शृंगार रस के अन्य उदाहरण –

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।

सौंह करै भौंहनु हंसे देन कहै नटि जाय।। (बिहारी)

देखन मिस मृग–बिहँग–तरु, फिरति बहोरि–बहोरि।

निरखि–निरखि रघुवीर–छवि, बाढी प्रीति न थोरि।।

देखि रूप लोचन ललचाने। हरखे जनु निज निधि पहिचाने।।

थके नयन रघुपति–छवि देखी। पलकन हू परहरी निमेखी।।

अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद–ससिहि जनु चितव चकोरी।।

लोचन–मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक–कपाट सयानी।।

(रामचरितमानस)

(ii) वियोग शृंगार –

- आचार्य भोज – ''जहाँ रति नामक भाव प्रकर्ष को प्राप्त हो, लेकिन अभीष्ट को न पा सके। वहाँ विप्रलम्भ शृंगार कहा जाता है।''
- आचार्य भानुदत्त – ''युवा और युवती की परस्पर मुदित पंचेन्द्रियों के पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव अथवा अभीष्ट की अप्राप्ति विप्रलम्भ है।''
- वियोग शंगार की 10 दशाएँ निर्धारित हैं –

1. अभिलाषा 2. चिन्ता 3. स्मरण 4. गुणकथन 5. उद्वेग 6. प्रलाप 7. उन्माद 8. व्याधि 9. जडता 10. मरण।

- वियोग शृंगार के चार प्रकार हैं – 1. पूर्वराग 2. मान 3. प्रवास 4. अभिशाप या करुणात्मक। यथा –

घडी एक नहिं आवडै, तुम दरसण बिन मोय।

तुम हो मेरे प्राण जी, काँसू जीवन होय।।

धान न भावै, नींद न आवै, विरह सतावे मोइ।

घायल सी घूमत फिरुं रे, मेरो दरद न जाणै कोइ।।

(मीरा)

वियोग शृंगार रस के अन्य उदाहरण –

बैठि, अटा सर औधि बिसूरति, पाय सँदेस नी 'श्रीपति' पी के।

देखत छाती फटै निपटै, उछटै, जब बिज्जु–छटा छबि नीके।।

कोकिल कूकैं, लगैं तक लूकैं, उठैं हिय हूकैं बियोगिनि ती के।

बारि के बाहक, देह के दाहक, आये बलाहक गाहक जी के।।

(श्रीपति)

अति मलीन बृखभानु–कुमारी,

अध मुख रहित, उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।

छूटे चिकुर, बदन कुम्हिलानो, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।।

2. हास्य रस –

- स्थायी भाव – हास
- आलम्बन विभाव – हास्यास्पद वचन, विकृत वेश या विकृत कार्य
- उद्दीपन विभाव – अनुपयुक्त वचन, अनुपयुक्त वेश, अनुपयुक्त चेष्टा
- अनुभाव – मुख का फुलाना, हँसना, आँखें बन्द होना, ओठ नथूने आदि का स्फुरण।
- संचारी भाव – चापल्य, उत्सुकता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था।

हास्य रस में छः प्रकार के हास्य का उल्लेख होता है।

(i) **स्मित** – आँखों में खुशी झलकना

(ii) **हसित** – मुस्कुराना

(iii) **विहसित** – दंतावली दिखाई देना

(iv) **अवहसित** – कंधे उचकाना एवं हँसी की आवाज आना

(v) **अतिहसित** – जोर–जोर से ठहाके लगाना

(vi) **अपहसित** – हँसते–हँसते लोट–पोट हो जाना, इधर–उधर गिरना। यथा –

नाक चढै सी–सी करै, जितै छबीली छैल।

फिरि फिरि भूलि वही गहै, प्यौ कंकरीली गैल।।

(बिहारी)

हास्य रस के अन्य उदाहरण –

सखि! बात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती ले कै।

पुनि बाँधि लयो सु नये नतना, रू कहूँ–कहूँ बुन्द करी छल कै।।

निकसी उहि गैल हुते जहाँ मोहन, लीनी उतारि तबै चल कै।

पतुकी धरि स्याम खिसाय रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै।।

तेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप–अहमिति अधिकाई।।

तहँ बैठे महेस–गन दोऊ! विप्र बेस गति लखइ न कोऊ।।

सखी संग दै कुँवर तब चलि जनु राज–मराल।

देखत फिरइ महीप सब कर–सरोज जय–माल।।

जेहि दिसि नारद बैठे फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली।।

पुनि–पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर–गन मुसकाहीं।।

3. करुण रस –

- स्थायी भाव – शोक

- आलम्बन विभाव – प्रिय व्यक्ति का दुख, मृत शरीर, इष्टनाश।
- उद्दीपन विभाव – आलम्बन का रुदन, मृतक दाह, यादें, स्मरण।
- अनुभाव – अश्रुपात, विलाप, भाग्यनिन्दा, भूमिपतन, उच्छवास।
- संचारी भाव – निर्वेद्र, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जडता, उन्माद। यथा –

राघौ गीध गोद करि लीन्हो।

नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुं अरघ जल दीन्हों।।

करुण रस के अन्य उदाहरण –

प्रिय मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विष–भरा।

चित्रस्थ–सी, निर्जीव सी, हो रह गयी हत उत्तरा।।

संज्ञा–रहित तत्काल ही वह फिर धरा पर गिर पडी।

उस समय मूर्छा भी अहो! हितकर हुई उसको बडी।।

फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई।

कुररी–सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई।।

बहुविधि विलाप–प्रलाप वह करने लगी उस शोक में।

निज प्रिय–वियोग समान दुख होता न कोई लोक में।।

देखि सुदामा की दीन दसा करूना करि कै करुनानिधि रोये।

पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैननि के जल सों पग धोये।।

4. रौद्र रस –

- स्थायी भाव – क्रोध
- आलम्बन विभाव – अपराधी व्यक्ति, शत्रु, विपक्षी, द्रोही, दुराचार।
- उद्दीपन विभाव – कटुवचन, शत्रु के अपराध, शत्रु की गर्वोक्ति।
- अनुभाव – नेत्रों का रक्तिम होना, त्यौंरो चढ़ाना, ओठ चबाना।
- संचारी भाव – मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति, जडता, गर्व। यथा –

  तुमने धनुष तोडा शशिशेखर का,

  मेरे नेत्र देखो,

  इनकी आग में डूब जाओगे सवंश राघव।

  गर्व छोडो

  काटकर समर्पित कर दो अपने हाथ।

  मेरे नेत्र देखो।

रौद्र रस के अन्य उदाहरण –

- श्री कृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।

  सब शोक अपना भूलकर करतल–युगल मलने लगे।।

  संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पडे।

  करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खडे।।

  उस काल मारे क्रोध के तनु काँपने उनका लगा।

  मानो हवा के जोरे से सोता हुआ सागर जगा।

  मुख बालरवि सम लाल होकर ज्वाल–सा बोधित हुआ।

  प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ।।

- भाखे लखन, कुटिल भयी भौंहें।
  रद–पट फरकत नैन रिसौहैं।।
- कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
  नाइ राम–पद–कमल–जुग, बोले गिरा प्रसाद।।

5. वीर रस –

- स्थायी भाव – उत्साह
- आलम्बन विभाव – शत्रु, शत्रु का उत्कर्ष।
- आश्रय – नायक (वीर पुरुष)।
- उद्दीपन विभाव – रिपु की गर्वोक्ति, मारु आदि राग, रणभेरी, रण कोलाहल।
- अनुभाव – अंग स्फुरण, रक्तिम नेत्र, रोमांच।
- संचारी भाव – हर्ष, धृति, गर्व, असूया आदि।

वीर रस के अन्तर्गत चार प्रकार के वीरों का उल्लेख किया गया है –

1. युद्धवीर (भीम, दुर्योधन) 2. धर्मवीर (युधिष्ठिर)

3. दानवीर (कर्ण) 4. दयावीर (राजा शिवि)

वीर रस के उदाहरण –

- सकल सूरसामंत, समरि बल जंत्र मंत्र तस।
  उट्ठिराज प्रथिराज, बाग मनो लग वीर नट।
  कढत तेग मनो वेग, लागत मनो बीज झट्ट घट।
  थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन धर।
  हर हरिष वीर जग्गे हुलस हुरव रंगि जब रत्त वर।।
  (चन्दबरदाई)
- स्व–जाति की देख अतीव दुर्दशा
  विगर्हणा देख मनुष्य–मात्र की।

  निहार के प्राणि–समूह–कष्ट को

  हुए समुत्तेजित वीर–केसरी।

हितैषणा से निज जन्म–भूमि की

अपार आवेश ब्रजेश को हुआ।

बनी महा बंक गठी हुई भवे,

नितान्त विस्फारित नेत्र हो गये।।

- मैं सत्य कहता हूँ सखे! सुकुमार मत जानो मुझे।
  यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा जानो मुझे।
  हे सारथे! हैं द्रोण क्या? आवें स्वयं देवेन्द्र भी।
  वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी।।

6. भयानक रस –

- स्थायी भाव – भय
- आलम्बन विभाव – बाघ, चोर, भयंकर वन, शक्तिशाली का कोप, भयानक दृश्य।
- उद्दीपन विभाव – आलम्बन की चेष्टाएँ, नीरवता, कोलाहल।
- अनुभाव – गिङगिङाना, श्लथ होना, आँखें बन्द करना, स्वर भंग, पलायन, मूर्च्छा।
- संचारी भाव – दैन्य, जङता, आवेग, शंका, चिन्ता आदि।

यथा –

और जब आई घोर काल रात्रि,

वे आततायी टूट पङे अबलाओं पर,

नोंचते, चबाते उनका माँस, भोगते,

कर्णबेधी–चीत्कार, हाहाकार,

दुराचार दृष्टिवेधी

देख नहीं सकी अबला, अचेत हो गई –सुलक्षणा

भयानक रस के अन्य उदाहरण –

- समस्त सर्पों सँग श्याम ज्यों कढे,
  कलिंद की नन्दिनि के सु–अंक से।
  खङे किनारे जितने मनुष्य थे,
  सभी महाशंकित भीत हो उठे।।
  हुए कई मूर्छित घोर त्रास से,
  कई भगे, मेदिनि में गिरे कई।
  हुई यशोदा अति ही प्रकंपिता,
  ब्रजेश भी व्यस्त–समस्त हो गये।।
- उधर गरजती सिंधु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी।
  चली आ रही फैन उगलती, फन फैलायें व्यालों सी।।

(जयशंकर प्रसाद)

7. वीभत्स रस –

हिन्दी साहित्य सेवन

- स्थायी भाव – जुगुप्सा
- आलम्बन विभाव – घृणास्पद वस्तु या कार्य, माँस, रक्त, अस्थि, श्मशान, दुर्गन्ध।
- उद्दीपन विभाव – आलम्बन के कार्य, रक्त, माँस आदि का सड़ना, कुत्ते–गिद्ध आदि द्वारा शव नोंचना।
- अनुभाव – मुँह मोड़ना, नाक–आँख बंद करना, थूकना।
- संचारी भाव – मोह, असूया, अपस्मार, आवेग, व्याधि जड़ता आदि।

वीभत्स रस के उदाहरण –

- कहाँ कमध कहाँ मथ्थ कहाँ कर चरन अंत रूरि।
  कहाँ कध वहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर।
  कहौ दंत मत्त हय षुर षुपरि, कुम्भ भ्रसुंडह रूंड सब।
  हिंदवान रान भय भान मुष, गहिय तेग चहुवान जब।।
  (चन्दबरदाई)
- सिर पर बैठो काग आंखि दोउ खात निकारत
  खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनन्द डर धारत।

8. अद्‌भुत रस –

- स्थायी भाव – विस्मय (आश्चर्य)
- आलम्बन विभाव – अलौकिक या आश्चर्यजनक वस्तु
- उद्दीपन विभाव – आलम्बन का गुण या कार्य।
- अनुभाव – रोमाँच, कँप, स्वेद, संभ्रम।
- संचारी भाव – वितर्क, भ्रान्ति, हर्ष, शंका, आवेग, मोह। यथा –

  एक अचम्भा देख्यौ रे भाई।

  ठाढा सिंह चरावै गाई।।

  जल की मछली तरवर ब्याई।

  पकड़ि बिलाइ मुरगै खाई।। (कबीर)

अद्‌भुत रस के अन्य उदाहरण –

- अखिल भुवन चर–अचर जग हरिमुख में लखि मातु।
  चकित भयी, गदगद वचन, विकसित दृग, पुलकातु।।
- दिखरावा निज मातहि उद्‌भुत रूप अखंड।
  रोम–रोम प्रति लागे कोटि–कोटि ब्रह्मांड।।
- अगनित रवि–ससि सिव चतुरानन।
  बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।
  तनु पुलकित, मुख बचन न आवा।
  नयन मूँदि चरनन सिर नावा।।

9. शान्त रस –

- स्थायी भाव – निर्वेद या वैराग्य
- आलम्बन विभाव – निर्वेद उत्पन्न करने वाली वस्तु, सांसारिक नश्वरता।

- उद्दीपन विभाव – सत्संग, पुण्याश्रम, तीर्थ, एकान्त।
- अनुभाव – रोमांच, दृढ़ता, कथन, चेतावनी, संकल्प।
- संचारी भाव – धृति, मोह, निर्वेद, हर्ष, विमर्श।
- आश्रय – ज्ञानी व्यक्ति। यथा –

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना यह तथ कह्यो गियानी।।

(कबीर)

शान्त रस के अन्य उदारहण –

- थिर नहिं जउबन थिर नहिं देह
  थिर नहिं रहए बालमु सओं नेह।
  थिर जनु जानह ई संसार
  एक पए थिर रह पर उपकार।। (विद्यापति)
- बुद्ध का संसार त्याग –
  क्या भाग रहा हूँ भार देख?
  तू मेरी ओर निहार देख–
  मैं त्याग चला निस्सार देख।
  अटकेगा मेरा कौन काम।
  ओ क्षणभंगुर भव! राम–राम!
- रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
  कह कब तक है वह प्राण–मात्र?
  भीतर भीषण कंकाल–मात्र,
  बाहर–बाहर है टीमटाम।
  ओ क्षणभंगुर भव! राम–राम!

10. वात्सल्य रस –

- स्थायी भाव – वत्सलता
- आलम्बन विभाव – बच्चा (संतान)
- उद्दीपन विभाव – आलम्बन की चेष्टाएँ
- अनुभाव – स्नेह से देखना, आलिंगन, चुम्बन, पालने झुलाना।
- संचारी भाव – हर्ष, गर्व आदि।
- आश्रय – माता–पिता। यथा –

जसोदा हरि पालने झुलावै

हलरावै दुलराय मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।

मेरे लाल को आओ निन्दरिया काहे न आनि सुलावै।

कबहुँ पलक हरि मूंद लेत कबहुँ अधर फरकावै।।

(सूरदास)

वात्सल्य रस के अन्य उदाहरण –

- हरि अपने रँग में कछु गावत।
  तनक तनक चरनन सों नाचत, मनहिं–मनहिं रिझावत।
  बाँहि उँचाई काजरी–धौरी गैयन टेरि बुलावत।
  माखन तनक आपने कर ले तनक बदन में नावत।
  कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिये खवावत।
  दुरि देखत जसुमति यह लीला हरखि अनन्द बढ़ावत।।
- मैया कबहुँ बढ़ेगी चोटी।
  कितनी बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।।
  (सूरदास)

11. भक्ति रस –

- स्थायी भाव – भगवद्विषयक रति
- आलम्बन विभाव – आराध्य देव, गुरुजन, इष्ट
- उद्दीपन विभाव – आराध्य या आलम्बन का रूप, उनके कार्य एवं लीलाएँ।
- अनुभाव – अश्रु, रोमांच, कंठावरोध, गद्‌गद् होना, नेत्र बंद होना।
- संचारी भाव – जगुप्सा, आलस्य आदि के अतिरिक्त सभी मुख्यतः हर्ष, आवेग, दैन्य, स्मरण।

शास्त्रों में नौ प्रकार की भक्ति (नवधाभक्ति) का उल्लेख मिलता है – 1. श्रवण 2. कीर्तन 3. स्मरण 4. पाद सेवन 5. अर्चन 6. वंदन 7. दास्य 8. साख्य 9. आत्म निवेदन।

भक्ति रस के उदाहरण –

- राम जपु राम जपु राम बावरे।
  घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।। (तुलसी)
  बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल।
  मोहनी सूरत सांवरी सूरत, नैणा बने विसाल।
  अधर सुधारस मुरली राजती, उर वैयन्ती माल।
  क्षुद्र घटिका कटि तट सोभित नुपुर सबद रसाल।
  मीरा के प्रभु सन्तन सुखदाई, भगत बछल गोपाल।। (मीरा)
- जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्‌यो।
  सोई सुसील, पुनीत, बेद–बिद विद्‌या–गुननि भर्‌यो।
  उतपति पांडु–सुतन की करनी सुनि सतपंथ डर्‌यो।
  ते त्रैलोक्य–पूज्य, पावन जस सुनि–सुनि लोक तर्‌यो।
  जो निज धरम बेद बोधित सो करत न कछु बिसरयो।
  बिनु अवगुन कृकलासकूप मज्जित कर गहि उधर्‌यो।।

महत्त्वपूर्ण तथ्य:

- ✓ रस संप्रदाय काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीनतम संप्रदाय है।
- ✓ भरतमुनि का मत है कि जिस प्रकार अनेक प्रकार के खाद्य–व्यंजनों के संयोग से रस उत्पन्न होता है उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से भी रस की निष्पत्ति होती है।
- ✓ रस–संप्रदाय के प्रवर्त्तक भरतमुनि हैं। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' रचना के छठे–सातवें अध्याय में नाटक के 4 अंगों–वस्तु, अभिनय संगीत और रस–में रस को प्रमुखता दी है।

- ✓ रसविरोधी धारा के आचार्यों में – भामह, दण्डी, वामन, उद्भट्ट रुद्रट इत्यादि प्रमुख है।
- ✓ रसवादी धारा के आचार्यों में – भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, रुद्रट इत्यादि आते हैं।
- ✓ अलंकारवादी भामह अलंकार को काव्य की आत्मा मानने के कारण रस को अलंकार्य न मानकर अलंकार स्वीकार करते हुए कहते हैं कि –रस रसवत् अलंकार है। ये विभाव को ही रस मानते हैं।
- ✓ वामन ने रस को गुणों की कांति कहा – दीप्तरसत्वं कान्तिः। साथ ही, इन्होंने रस को अलंकार की सीमा से हटाकर गुण के साथ जोडा।
- ✓ रुद्रट (अलंकारवादी) ने शांत और प्रेयान् (प्रेयस्) नामक दो रसों को जोडकर रसों की संख्या 10 कर दी। इनका मत है कि रस के अभाव में काव्य शास्त्र की भाँति नीरस हो सकता है। साथ ही, इन्होंने रस को नाटक तक सीमित रखने का विरोध एवं रसहीन काव्य को शास्त्र की श्रेणी में रखने का आग्रह किया।
- ✓ क्षेमेन्द्र ने काव्य को 'रस जीवित' घोषित किया। इनका औचित्य सिद्धांत रस–सिद्धांत के सर्वथा अनुकूल है।
- ✓ भानुदत्त ने रस के लौकिक और मानोरथिक दो भेद बताये और छल एवं जृम्भा जैसे नवीन भावों की उद्भावना की।
- ✓ मम्मट ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य के अंतर्गत रस, रसाभास, भावाभास इत्यादि का वर्णन कर रस को व्यंजना का व्यापार माना।
- ✓ रूपगोस्वामी ने भक्ति रस की प्रतिष्ठा की। इन्होंने भक्तिरस में ही सभी रसों को लाने का प्रयास किया। इन्होंने भक्ति का स्थायी भाव 'कृष्ण–रति' बताया।
- ✓ पं जगन्नाथ ने रस को 'रसनिजस्वरूप आनंद' कहा। ये 'रसो वै रसः' (वैदिक मंत्र) को साक्ष्य मानकर रस को आनंदस्वरूप मानते है तथा स्थायी भाव को ही रस मानते हैं।
- ✓ भरतमुनि के अनुसार 8 रस हैं।
- ✓ शांतरस को 9 वाँ रस माननेवाले – उद्भट
- ✓ वात्सल्य रस को 10 वाँ रस माननेवाले – पं. विश्वनाथ
- ✓ भक्तिरस को 11 वाँ रस माननेवाले – भानुदत्त, गोस्वामी
- ✓ प्रेयान नामक रस के प्रतिष्ठापक – रुद्रट

हिंदी साहित्य

शब्द शक्तियाँ

शब्द का अर्थ बोध कराने वाली शक्ति ही शब्द शक्ति है।

आचार्य चिन्तामणि ने कहा है कि 'जो सुन पड़े सो शब्द है, समुझि परै सो अर्थ'

अर्थात् जो सुनाई पड़े वो शब्द और तथा उसे सुनकर जो अर्थ समझ में आए वो उसका अर्थ है।

शब्द तीन प्रकार के होते है – (1) वाचक (2) लक्षक (3) व्यंजक

अर्थ – (1) वाच्यार्थ (2) लक्ष्यार्थ (3) व्यंग्यार्थ

शक्ति/व्यापार – (1) अभिधा (2) लक्षणा (3) व्यंजना

महत्वपूर्ण :– शक्ति शब्द का प्रयोग – विश्वनाथ

'व्यापार' शब्द का प्रयोग मम्मट ने किया।

शब्द शक्ति का अर्थ और परिभाषा – शब्द शक्ति का अर्थ है–शब्द की अभिव्यंजक शक्ति। शब्द का कार्य किसी अर्थ की अभिव्यक्त तथा उसका बोध करता होता है। इस प्रकार शब्द एवं अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द एवं अर्थ का सम्बन्ध ही शब्द शक्ति है। 'शब्दार्थ सम्बन्धः शक्ति। अर्थात्(बोधक) शब्द एवं अर्थ के सम्बन्ध को (शब्द) शक्ति कहते हैं। शब्द शक्ति की परिभाषा इस प्रकार भी की जा सकती है– 'शब्दों के अर्थों का बोध कराने वाले अर्थ–व्यापारों को शब्द शक्ति कहते हैं।

शब्द शक्ति के भेद

शब्द के विभिन्न प्रकार के अर्थों के आधार पर शब्द शक्ति के प्रकारों का निर्धारण किया गया है। शब्द के जितने प्रकार के अर्थ होते हैं, भाषा के जितने प्रकार के अभिप्राय होते हैं, उतने ही प्रकार की शब्द शक्तियां होती हैं। शब्द के तीन प्रकार के अर्थ स्वीकार किए गए हैं– (1) वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ, (2) लक्ष्यार्थ, (3) व्यंग्यार्थ। इस अर्थों के आधार पर तीन प्रकार की शब्द शक्तियां मानी गई हैं– (1) अभिधा, (2) लक्षणा, (3) व्यंजना।

✓ कुमारिल भट्ट ने तात्पर्या नामक चौथी शब्द शक्ति भी स्वीकार की है, जिसका सम्बन्ध वाक्य से होता है।

(1) अभिधा शब्द शक्ति – शब्द की जिस शक्ति से किसी शब्द के मुख्य अर्थ का बोध होता है। साक्षात् सांकेतिक अर्थ/मुख्यार्थ/वाच्यार्थ को प्रकट करने वाली शब्द शक्ति अभिधा कहलाती है।

''पण्डित रामदहिन मिश्र ने साक्षात् सांकेतिक अर्थ को अभिधा कहा है।'' अभिधा को प्रथमा या अग्रिमा शक्ति भी कहते है।

रामचन्द्र शुक्ल ने वाच्यार्थ से ही रस की उत्पत्ति मानी।

शब्द को सुनने अथवा पढ़ने के पश्चात् पाठक अथवा श्रोता को शब्द का जो लोक प्रसिद्ध अर्थ तत्क्षण ज्ञात हो जाता है, वह अर्थ शब्द की जिस सीमा द्वारा मालूम होता है, उसे अभिधा शब्द शक्ति कहते हैं।

अभिधा शब्द शक्ति से जिन शब्दों का अर्थ बोध होता है वे तीन प्रकार के होते हैं।

(।) रूढ़ः वे शब्द जिनकी उत्पत्ति नहीं होती जैसे – घोडा, घर

(।।) यौगिक : जिनकी उत्पत्ति प्रत्यय, समास आदि से होती है जैसे – विद्यालय, रमेश

(।।।) योगरूढ़ : यौगिक क्रिया से बने लेकिन निश्चित अर्थ में रूढ़ हो गये जैसे – जलज, दशानन

''अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन

अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत प्रवीन'' । – देव

''शब्द एवं अर्थ के परस्पर संबंध को अभिधा कहते है''। – जगन्नाथ

''अनेकार्थ हू शब्द में, एक अर्थ की व्यक्ति

तेहि वाच्यारथ को कहें, सज्जन अभिधासक्ति''। – भिखारीदास

विशेषः– वह किसी पद में 'यमक' अलंकार की प्राप्ति होती है तो वहाँ प्रायः अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे –

।. ''कनक–कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

वा खाये बौराय जग, वा पाये बौराय''।।

।।.''सारंग ले सारंग उड्यो सारंग पूग्यो आय।

जे सारंग सारंग कहे, मुख को सारंग जाय''।।

कभी–कभी 'उत्प्रेक्षा' अलंकार के पदों में भी उनका मुख्य अर्थ ही प्रकट होता है, अतः इस अलंकार के पदों में भी प्रायः अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे –

।. ''सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।

मानहु नीलमणि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात''।।

।।. ''कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये''।।

।।।. ''भजन कह्यो तातै भज्यौ, भज्यौ न एको बार।

दूर भजन जाते कह्यौ, सो तू भज्यौ गवार''।।

आचार्य भट्टनायक अभिधा शब्द शक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि से रस की अनुभूति कराने में अभिधा शब्द शक्ति ही प्रधान है। अभिधा के द्वारा ही पहले अर्थबोध होता है और उसके बाद भावकत्व के द्वारा साधारणीकरण और भोजकत्व के द्वारा रसास्वादन होता है।

(2) लक्षणा शब्द शक्ति – जहां मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर मुख्य अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ को लक्ष्य किया जाता है, वहां लक्षणा शब्द शक्ति होती है। जैसे –मोहन गधा है। यहां गधे का लक्ष्यार्थ है मूर्ख।

लक्षणा शब्द शक्ति के भेद –

(अ) लक्ष्यार्थ के आधार पर – इस आधार को लेकर लक्षणा के दो भेद हैं – (1) रूढ़ा लक्षणा, (2) प्रयोजनवती लक्षणा।

(1) रूढ़ा लक्षणा – जहां मुख्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहां रूढ़ा लक्षणा होती हैं। जैसे –पंजाब वीर हैं –इस वाक्य में पंजाब का लक्ष्यार्थ है –पंजाब के निवासी। यह अर्थ रूढ़ि के आधार पर ग्रहण किया गया है अतः रूढ़ा लक्षणा है।

'राजस्थान वीर है।'

प्रस्तुत वाक्य में 'राजस्थान' का मुख्यार्थ है – राजस्थान राज्य। परन्तु यहाँ इस अर्थ की बाधा है क्योंकि राजस्थान तो जङ है, वह वीर कैसे हो सकता है? इस स्थिति में इसका यह लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है – 'राजस्थान के लोग वीर हैं।'

यह अर्थ आधार–आधेय सम्बन्ध की दृष्टि से लिया जाता है। यहाँ 'राजस्थान राज्य' आधार है तथा 'राजस्थान के लोग' –आधेय है। यह अर्थ ग्रहण करने में रूढ़ि कारण है। राजस्थान के लोगों को राजस्थान कहने की रूढ़ि है। अतएव यहाँ 'रूढ़ा–लक्षणा' शब्द शक्ति मानी जाती है।

अन्य उदाहरण –

1. पंजाब शेर है।
2. यह तैल शीतकाल में उपयोगी है।
3. मुँह पर ताला लगा लो।
4. दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
   परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।
5. भाग जग्यो उमगो उर आली, उदै भयो है अनुराग हमारो।

(2) प्रयोजनवती लक्षणा – मुख्यार्थ में बाधा होने पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए जब लक्ष्यार्थ का बोध किया जाता है, वहां प्रयोजनवती लक्षणा होती है। जैसे– मोहन गधा है –इस वाक्य में 'गधा' का लक्ष्यार्थ 'मूर्ख' लिया गया है और यह मोहन की मूर्खता को व्यक्त करने के प्रयोजन से लिया गया है अतः यहां प्रयोजनवती लक्षणा हैं।

उदाहरण –

'श्वेत दौङ रहा है।'

'प्रस्तुत वाक्य में 'श्वेत' का मुख्यार्थ 'सफेद रंग' बाधित है क्योंकि वह दौङ कैसे सकता है। तथा इसका लक्ष्यार्थ है – 'श्वेत रंग का घोङा दौङ रहा है।' अर्थात् किसी घुङदौङ प्रतियोगिता के दौरान यह वाक्य बोला जाता है तो श्रोता इसका यह अर्थ ग्रहण कर लेता है कि 'सफेद रंग का घोङा दौङ रहा है।' इस प्रकार किसी प्रयोजन विशेष (घुङदौङ) से यह अर्थ ग्रहण करने के कारण यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है।

अन्य उदाहरण –

1. 'गंगा पर ग्राम है।' या 'साधु गंगा में बसता है।'
2. वह स्त्री तो गंगा है।
3. भाले प्रवेश कर रहे हैं। (युद्धभूमि में 'भालेधारी सैनिक' प्रवेश कर रहे हैं।)
4. उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
   विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।।

(ब) मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार पर – इस आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं–(1) गौणी लक्षणा, (2) शुद्धा लक्षणा।

(1) गौणी लक्षणा – जहां गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है, वहां गौणी लक्षणा होती है। जैसे–मोहन शेर है। इस वाक्य में मोहन को वीर दिखाने लिए उसको शेर कहा गया है, अर्थात् मोहन में और शेर में सादृश्य है अतः यहां गौणी लक्षणा है।

गौणी लक्षणा – लक्षणा शब्द शक्ति में लक्ष्यार्थ सदैव मुख्यार्थ से सम्बद्ध होता है। यथा –

(i) सादृश्य संबंध (ii) आधाराधेय संबंध (iii) सामीप्य संबंध

(iv) वैपरीत्य संबंध (v) तात्कर्म्य संबंध (vi) कार्यकारण संबंध

(vii) अंगांगि संबंध

इनमें से जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा उत्पन्न होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है तो वहाँ पर गौणी लक्षणा होती है।

सामान्यतः रूपक व लुप्तोपमा (धर्म लुप्ता) अलंकार के पदों में गौणी लक्षणा ही होती है। जैसे –

'मुख चन्द्र है।'

यहाँ मुख्यार्थ में यह बाधा है कि 'मुख चन्द्र कैसे हो सकता है।' तब लक्ष्यार्थ यह लिया जाता है कि 'मुख चन्द्रमा जैसा सुन्दर है।' यह अर्थ सादृश्य संबंध के कारण लिया जाता है अतः यहाँ गौणी लक्षणा है।

अन्य उदाहरण –

1. नारी कुमुदिनी अवध सर रघुवर विरह दिनेश।

अस्त भये प्रमुदित भई, निरखि राम राकेश।।

2. बीती विभावरी जाग री।

अम्बर पनघट में डूबो रही तारा घट उषा नागरी।

(2) शुद्धा लक्षणा – जहां गुण सादृश्य को छोड़कर अन्य किसी आधार यथा–समीपता, साहचर्य, आधार–आधेय सम्बन्ध, के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया गया हो, वहां शुद्धा लक्षणा होती है। यथा–लाल पगडी आ रही है। यहां लाल पगडी का अर्थ है सिपाही। इन दोनों में साहचर्य सम्बन्ध है अतः शुद्धा लक्षणा है।

उदाहरण –

1. मेरे सिर पर क्यों बैठते हो। (सामीप्य संबंध)

2. पानी में घर बनाया है तो सर्दी लगेगी ही। (सामीप्य संबंध)

3. आँचल में है दूध और आँखों में पानी। (सामीप्य संबंध)

4. वह मेरे लिए राजा है। (तात्कर्म्य संबंध)

5. इस घर में नौकर मालिक है। (तात्कर्म्य संबंध)

6. पितु सुरपुर सियराम लखन बन मुनिव्रत भरत गह्यो।

हौं रहि घर मसान पावक अब मरिबोई मृतक दह्यो।।

7. सारा घर तमाशा देखने गया है। (आधार आधेय)

(स) मुख्यार्थ है या नहीं के आधार पर लक्षणा के भेद – लक्ष्यार्थ के कारण मुख्यार्थ पूरी तरह समाप्त हो गया है या बना हुआ है, इस आधार पर लक्षणा के दो भेद किए गए हैं–(1) उपादान लक्षणा, (2) लक्षण लक्षणा।

(1) उपादान लक्षणा – जहां मुख्यार्थ बना रहता है तथा लक्ष्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के साथ ही होता है वहां उपादान लक्षणा होती हैं। जैसे–लाल पगडी आ रही है। इसमें लाल पगडी भी आ रही है और (लाल पगडी पहने हुए) सिपाही भी जा रहा है। यहां मुख्यार्थ (लाल पगडी) के साथ–साथ लक्ष्यार्थ (सिपाही) का बोध हो रहा है अतः उपादान लक्षणा है।

उदाहरण –

1. ये झंडे कहाँ जा रहे हैं ?

इस वाक्य में झण्डा धारण करने वाले पुरुषों पर झण्डे का आरोप है और अर्थ में दोनों का कथन हो रहा है, अतः सारोपा लक्षणा है। धार्य–धारक भाव से अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है, अतः शुद्धा लक्षणा है तथा 'झण्डे' का अपना मुख्य अर्थ लुप्त नहीं हुआ है, अतः उपादान लक्षणा है।

नोट – जहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है, वहाँ प्रायः उपादान लक्षणा ही कार्य करती है।

जैसे –

1. औरे भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर।

औरे भाँति बौरन के झौंरन के ह्वै गये।।

2. औरे कछु चितवनि चलनि, औरे मृदु मुसकानि।

औरे कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि।।

(2) लक्षण लक्षणा – इसमें मुख्यार्थ पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तभी लक्ष्यार्थ का बोध होता है।

उदाहरण –

1. आज भुजंगों से बैठे हैं, वे कंचन के घड़े दबाये।

विनय हार कर कहती है, ये विषधर हटते नहीं हटाये।।

2. कच समेटि करि भुज उलटि खए सीस पट डारि।

काको मन बाँधे न यह जूरौ बाँधन हारि।।

(द) सारोपा एवं साध्यवसाना लक्षणा –

(1) सारोपा लक्षणा – जहां उपमेय और उपमान में अभेद आरोप करते हुए लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो वहां सारोपा लक्षणा होती हैं। इसमें उपमेय भी होता है और उपमान भी। जैसे – उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। यहां उदयगिरि रूपी मंच पर राम रूपी प्रभातकालीन सूर्य का उदय दिखाकर उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया गया है अतः सारोपा लक्षणा है।

उदाहरण –

1. अनियारे दीरघ नयनि, किसती न तरुनि समान।

वह चितवनि और कछू, चेहि बस होत सुजान।।

2. तेरा मुख सहास अरुणोदय, परछाई रजनी विषादमय।

यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,

खेल खेल थक थक सोने दो, मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या?

3. सरस विलोचन विधुवदन लख आलि घनश्याम।।

(2) साध्यवसाना लक्षणा – इसमें केवल उपमान का कथन होता है, लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु उपमेय पूरी तरह छिप जाता है। जैसे–जब शेर आया तो युद्ध क्षेत्र से गीदङ भाग गए। यहां शेर का तात्पर्य वीर पुरुष से और गीदङ का तात्पर्य कायरों से है। उपमेय को पूरी तरह छिपा देने के कारण यहां साध्यवसाना लक्षणा है।

उदाहरण –

1. विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है।

   अरी हृदय को थाम महल के लिए झोपङी बलि होती है।।

2. पेट में आग लगी है। (भूख)
3. हिलते द्रुमदल कल किसलय देती गलबाँही डाली।

   फूलों का चुंबन छिङती मधुपों की तान निराली।।

4. कनकलता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बान।
5. बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से।

   मणिवाले फणियों का मुख, क्यों भरा हुआ हीरों से।।

6. चाहे जितना अर्ध्य चढ़ाओ, पत्थर पिघल नहीं सकता।

   चाहे जितना दूध पिलाओ, अहि–विष निकल नहीं सकता।।

7. लाल पगङी आ रही है। (पुलिस)

व्यंजना शब्द शक्ति

व्यंजना शब्द शक्ति – अभिधा और लक्षणा के विराम लेने पर जो एक विशेष अर्थ निकालता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। जैसे – घर गंगा में है। यहां व्यंजना है कि घर गंगा की भांति पवित्र एवं स्वच्छ है।

व्यंजना शब्द शक्ति के भेद –

(अ) शाब्दी व्यंजना – जहां शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह शब्द हटा देने पर व्यंग्यार्थ समाप्त हो जाता है वहां शाब्दी व्यंजना होती है। जैसे –

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गम्भीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर।।

यहां वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्दों के कारण व्यंजना सौन्दर्य है। इनके दो–दो अर्थ हैं–1. राधा, 2. गाय तथा 1. श्रीकृष्ण 2. बैल। यदि वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्द हटा दिए जाएं और इनके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिए जाएं, तो व्यंजना समाप्त हो जाएगी।

शाब्दी व्यंजना को पुनः दो वर्गों में बांटा गया है–अभिधामूला शाब्दी व्यंजना, लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(1) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना – जहां पर एक ही शब्द के नाना अर्थ होते हैं, वहां किस अर्थ विशेष को ग्रहण किया जाए, इसका निर्णय अभिधामूला शाब्दी व्यंजना करती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि अभिधामूला शाब्दी व्यंजना में शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाता है तथा व्यंग्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के माध्यम से होता है जैसे–सोहत नाग न मद बिना, तान बिना नहीं राग। यहां पर नाग और राग दोनों शब्द अनेकार्थी हैं, परन्तु 'वियोग' कारण से इनका अर्थ नियन्त्रित कर दिया गया है। इसलिए यहां पर 'नाग' का अर्थ हाथी और 'राग' का अर्थ रागिनी है। अब यदि यहां नाग का पर्यायवाची भुजंग रख दिया जाए तो व्यंग्यार्थी हो जाएगा।

उदाहरण –

''चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।''

यहाँ पर अभिधा शब्द शक्ति के द्वारा 'वृषभानुजा' और 'हलधर के बीर' का अर्थ क्रमशः 'राधा' और 'कृष्ण' निश्चित हो जाता है, फिर भी यहाँ यह अर्थ व्यंजित होता है कि यह जोडी बिलकुल एक दूसरे के उपयुक्त है। अतएव यहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है।

(2) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना – जहां किसी शब्द के लाक्षणिक अर्थ से उसके व्यंग्यार्थ पर पहुंचा जाए और शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाए, वहां लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना होती है। यथा –''आप तो निरै वैशाखनन्दन हैं।'' यहां वैशाखनन्दन व्यंग्यार्थ पर पहुंचना होता है। लक्षण है–मूर्खता। अब यदि यहां वैशाखनन्दन शब्द बदल दिया जाए तो व्यंजना का लोप हो जाए, परन्तु 'गधा' रख देने से लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना तो चरियार्थ नहीं रहेगी।

उदाहरण –

1. ''कहि न सको तव सुजनता! अति कीन्हों उपकार।

सखे! करत यों रहु सुखी जीवहु बरस हजार।।''

प्रस्तुत दोहे में अपकार करने वाले व्यक्ति कार्यों से दुःखी कोई व्यक्ति कह रहा है–''मैं तुम्हारी सज्जनता का वर्णन नहीं कर सकता। तुमने बहुत उपकार किया। इसी प्रकार उपकार करते हुए तुम हजार वर्ष तक सुखी रहो।''

यहाँ वाच्यार्थ में अपकारी की प्रशंसा की गई है, परन्तु अपकारी की कभी प्रशंसा नहीं की जा सकती है, अतः वाच्यार्थ में बाधा है। यहाँ इस वाच्यार्थ को तिरस्कृत करके विपरीत लक्षणा से 'सुजनता' का 'दुर्जनता', 'उपकार' का 'अपकार' और 'सखे' का 'शत्रु' अर्थ लिया जायेगा। यहाँ व्यंग्यार्थ 'अत्यन्त अपकार' है। अतएव यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है।

1. अजौ तर्‌यौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।

नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकतनु के संग।।

2. फली सकल मन कामना, लूट्‌यो अगनित चैन।

आजु अँचै हरि रूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन।।

(ब) आर्थी व्यंजना – जब व्यंजना किसी शब्द विशेष पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित होती है, तब वहां आर्थी व्यंजना मानी जाती हैं। यथा –

आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।

यहां नीचे वाली पंक्ति से नारी के दो गुणों की व्यंजना होती है–उसका ममत्व भाव एवं कष्ट सहने की क्षमता। यह व्यंग्यार्थ किसी शब्द के कारण है अतः आर्थी व्यंजना है।

1. ''सागर कूल मीन तडपत है हुलसि होत जल पीन।''

यह कथन सामान्यतः कोई महत्त्व नहीं रखता, परन्तु जब इस बात का पता चल जाता है कि इसको कहने वाली गोपिकाएँ हैं, तब इसका यह अर्थ निकलता है कि हम कृष्ण के समीप होते हुए भी मछली के समान तडप रही हैं। कृष्ण के दर्शन से हमें वैसा ही आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मछली को पानी में जाने से होता है।

2. सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौ वहे वा जमुना के तीर।।

3. सिंधु सेज पर धरा वधू अब, तनिक संकुचित बैठी सी।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी।।

4. ''प्रीतम की यह रीति सखी, मोपै कही न जाय।

झिझकत हू ढिंग ही रहत, पल न वियोग सुहाय।।''

यह कथन किसी नायिका का है। व्यंग्यार्थ यह है कि नायिका रूपवती है, नायक उसमें अत्यधिक आसक्त है। यहाँ आर्थी व्यंजना इसलिए है कि 'झिझकत', 'ढिंग' आदि शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची अन्य शब्द भी रख दिये जायें तो भी व्यंग्यार्थ बना रहेगा।

✓ एक अन्य आधार पर व्यंजना के तीन भेद किए गए हैं–1. वस्तु व्यंजना, 2. अलंकार व्यंजना, 3. रस व्यंजना।

1. वस्तु व्यंजना – जहां व्यंग्यार्थी द्वारा किसी तथ्य की व्यंजना हो वहां वस्तु व्यंजना होती हैं। जैसे–

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई।

उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।।

यहां रात्रि बीत जाने और हृदय में आशा के उदय आदि की सूचना व्यंजित की गई है अतः वस्तु व्यंजना है।

2. अलंकार व्यंजना – जहां व्यंग्यार्थ किसी अलंकार का बोध कराये वहां अलंकार व्यंजना होती हैं। जैसे–

उसे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त।

लगे देखने क्षुब्ध नयन से प्रकृति विभूति मनोहर शान्त।।

यहां उत्प्रेक्षा अलंकार के कारण व्यंजना सौन्दर्य है अतः इसे अलंकार व्यंजना कहेंगे।

3. रस व्यंजना – जहां व्यंग्यार्थ से रस व्यंजित हो रहा हो, वहां रस–व्यंजना होती है। यथा –

जब जब पनघट जाऊं सखी री वा जमुना के तीर।

भरि–भरि जमुना उमङि चलति हैं इन नैननि के नीर।।

यहां 'स्मरण' संचारीभाव की व्यंजना होने से वियोग रस व्यंजित है अतः रस व्यंजना है।

शब्द शक्ति का महत्व

किसी शब्द का महत्व उसमें निहित अर्थ पर निर्भर होता हैं। बिना अर्थ के शब्द अस्तित्व–विहीन एवं निरर्थक होता है। शब्द शक्ति के शब्द में निहित इसी अर्थ की शक्ति पर विचार किया जाता है। काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ ग्रहण से ही काव्य आनन्ददायक बनता है। अतः शब्द के अर्थ को समझना ही काव्य के आनन्द को प्राप्त करने की प्रधान सीढ़ी हैं और शब्द के अर्थ को समझने के लिए शब्द शक्तियों की जानकारी होना परम आवश्यक हैं।